उत्तमा परीक्षोपयोगी

संस्कृत सुषमा की टीका

श्री सुगणचन्द्र शास्त्री, साहित्य-रत्न



प्रकाः

रीगल बुक डिपो

नई सड़क,

क्रम सूची

अन्वय—(यस्य) जान्हवी मूर्ध्नि पादे वा [यः] कण्ठे अथ वपुषि कालः, [तं] कामारिं कामतातं वा कंचिद्देवं भजामहे।

अर्थ—जिसके सिर पर अथवा चरणों में गंगा है [गंगा का स्थान शिव की जटाओं में है, परन्तु पत्नी होने से उसका चरणों में भी स्थान है] और जो शरीर और कण्ठ से काला [नीलवर्ण] है, उसी, काम के शत्रु अथवा काम के पिता रूप किसी देव (शिव) को भजते हैं [उसकी उपासना करते हैं]। [शंकर ने काम को जलाया था, अतः वे कामशत्रु हैं। किन्तु उन्होंने ही बाद में काम पत्नी रति की प्रार्थना पर दयालु होकर उसे अनंग शरीर दिया था, अतः वे काम के पिता भी हुए]

कम्बुग्रीवकथा

शब्दार्थ—कस्मिंश्चिद् जलाशये = किसी तालाब में। कच्छपः = कछुआ। मित्रे = दो दोस्त, मित्र शब्द नपुंसक लिंग में दोस्त का अर्थ देता है, पर पुलिंग में इसका अर्थ सूर्य होता है। आश्रिते = पहुंचे हुए। आसाद्य = पाकर। स्व स्व-नीड़संश्रयं = अपने अपने घोंसलों में आराम। कुरुतः = दो करते हैं। कृत्वा = करके। शोष मागतम् = शुष्कता को प्राप्त हुआ। तावूचतुः = वे दोनों बोले। जम्बाल शेषम् = जिसमें कीचड़ शेष है। सञ्जातम् = हो गया। एतत् = यह। तच्छ्रुत्वा = वह सुनकर। आह = बोला। साम्प्रतं = अब। नास्त्यस्माकं = नहीं है हमारा। तदानीयताम् = सो लाओ। अन्विष्यताम् = ढूंढो। प्रभूत = घने। येन = जिससे। युवां = तुम दोनों। कोटि भागयोः = सिरों के भागों में। संगृह्य = पकड़ कर। करिष्यावः = हम दोनों करेंगे। भवता = आपने। स्थातव्यम् = ठहरना चाहिये। नोचेद् = यदि नहीं। तव = तेरा। पातो = पतन। तथा नुष्ठिते = वैसा करने पर। व्यवस्थितं = स्थित को। किञ्चित् पुरम् = किसी नगर को। आलोकितम् = देखा। ये = जो। पौराः = पुरजन। ते = वे। नीयमानं = ले जाये जाते हुए को। विलोक्य = देख कर। इदमूचुः = यह बोले। पक्षिभ्याम् = दो पक्षियों द्वारा। नीयते = ले जाया जारहा है। पश्यत = देखो। आकर्ण्य = सुनकर। वक्तुमना = कहना चाहताहुआ। अर्धोक्तौ = आधी बात

में। जनैः=लोगों ने। खण्डशः=खण्ड खण्ड। कृतश्च=और कर दिया। कम्बुग्रीव=शंख जैसी गर्दन वाला।

अर्थ—किसी तालाब में कम्बुग्रीव नाम का कछुआ है। उसके संकट विकट नाम के, हंस जाति के और उसके प्रेम की सर्वोच्च चोटी को पहुँचे हुए [उसके अत्यन्त प्रेम पात्र] दो मित्र हैं, जो नित्य ही [उस] तालाब के तीर को पाकर [वहां आकर] उसके साथ अनेक देवताओं और ऋषियों की कहानियां कह कर, सूर्यास्त के समय में अपने अपने घोंसलों में आश्रय लेते हैं। इसकेबाद, समय बीतते बीतते वृष्टि न होने से वह सर शनैः शनैः (आहिस्ता २) शुष्कता को प्राप्त हो गया [सूख गया]। तब उसके [कछुवे के] दुःख से दुःखित हुए वे दोनों बोले,=भो [ऐ] मित्र! इस तालाब में [अब] कीचड़ मात्र बच रहा है।" यह सुन कर कम्बुग्रीव बोला=“भो! जल के अभाव होने से अब हमारा यहाँ जीवन नहीं रह सकता। तो भी उपाय सोचिये।

सो तुम दोनों कोई मज़बूत रस्सी [दृढरज्जु] या हल्का-सा काठ [लकड़ी] लाओ। और कोई बहुत जल वाला तालाब भी ढूँढो, जिससे, मेरे द्वारा [उस काठ को] बीच में से दान्तों में पकड़ लेने पर, तुम दोनों मेरे साथ उस काष्ठ को दोनों सिरों से पकड़ कर उस तालाब पर ले जाओ।" वे दोनों बोले, “ऐ दोस्त! ऐसा ही करेंगे। पर तुम चुप रहना [मुंह न खोलना] नहीं तो लकड़ी से [छूटकर] गिर पड़ोगे।" ऐसा किये जाने पर, जाते हुए कम्बुग्रीवने नीचे [भूमि पर] स्थित कोई नगर देखा। वहां जो पुरजन थे वे [उसको] वैसे ले जाये जाते हुए को देखकर आश्चर्य पूर्वक यह बोले,“ओहो चक्र (पहिया) जैसी शकल की कोई चीज दो पक्षियों द्वारा ले जाई जा रही है। देखो देखो!" फिर उनके [इस] कोलाहल को सुन कर कम्बुग्रीव बोला, “अरे! यह शोर क्या है?" ऐसा कहना चाहता हुआ वह आधी बात में ही [मुँह खुल जाने से] गिरपड़ा और लोगोंने उस को खण्ड खण्ड कर दिया।

वणिक् पुत्र कथा
(बनिये के बेटे की कहानी)

शब्दार्थ—अधिष्ठाने=नगर में बस्ती में। विभव=धन। देशान्तरगमनमना=दूसरे देश में जाने का इच्छुक। तुलासीत्=तोलने की बड़ी तखड़ी थी। निक्षेप भूतां=धरोहररूप। प्रस्थितः=चलदिया। भ्रान्त्वा=घूमकर। मूषकैः=चूहोंने। ईदृगेवायम्=ऐसाही है यह। शाश्वतम्=नित्य स्थायी। नद्यां=नदी में। आत्मीयम्=अपने। स्नानोपकरणहस्तं=स्नानके साधन साबुन तेल आदि-हाथमें लियेहुए को। प्रेषय=भेज दे। शङ्कितः=डराहुआ। पितृव्य=चाचा। यास्यति=जायेगा। तद्गम्यताम्=सो जाओ। अथासौ=फिर वह। आदाय=लेकर। प्रहृष्टमना=प्रसन्नचित्त। सार्धं=साथ। तेनाभ्यागतेन=उस अभ्यागत के साथ। तथानुष्ठिते=ऐसा किये जाने पर। स्नात्वा=स्नान करके। प्रक्षिप्य=फेंक कर। बृहच्छिलयाच्छाद्य=बृहद्+शिलया+आच्छाद्य, बड़ी भारी शिलासे ढककर। सत्वरं=शीघ्र। पृष्टश्च=पूछा गया। वणिजा=बनिये ने। कुत्र=कहां। मे=मेरा। श्येनेन=बाज ने। हृतः=हर लिया उड़ालिया। श्रेष्ठ्याह=श्रेष्ठी+आह, सेठ बोला। हर्तुं=हरने के लिये। शक्तोस्ति=समर्थ होसकता है। समर्पय=अर्पण कर, देदो। नयति=ले जाता है। दारकेण=बालक से। विवदमानौ=विवाद करते हुए। द्वावपि=दोनों ही (द्वौ+अपि)। तत्र=वहां। तार स्वरेण=ऊँचे स्वर से। अब्रह्मण्यम्=अनुचित कर्म। अनेन=इसने। तमूचुः=उसे बोले। पश्यतो=देखते हुए के। तच्छ्रुत्वा=वह सुनकर (तद्=श्रुत्वा)। प्रोचुः=बोले। अभिहितम्=कहा है। भवता=आपने। श्रूयताम्=सुनो। मद्वचः=मेरा वचन।

राजंस्तत्र=हेराजन् वहां (राजन्+तत्र)। हरेच्छ्येनो=शिकरा हरले। नात्र=यहां नहीं। आदितः=प्रारम्भ से। निवेदयामास=निवेदन

दरताथा। तैः = उन्होंने। विहस्य = हँसकर। तौ = उन दोनों को। सम्बोध्य = समझा कर। सन्तोषितौ = सन्तुष्ट किये।

अर्थ—किसी नगर में एक जीर्णधन नाम का वनिये का पुत्र है। और वह धन के नाश (या कम) हो जाने पर विदेश गमन का इच्छुक हो कर चिन्ता करने लगा (विदेश गमन के विषय में सोचने लगा)।

उसके घर में भारी लोहे की बनी हुई, पूर्व पुरखाओं द्वारा कमाई हुई (बनाई हुई) एक तुला थी। उसको किसी सेठ के घर में धरोहर रूप में रख कर वह विदेश चल पड़ा। इसके पश्चात् देर तक, देशान्तरों में, अपनी इच्छा के अनुसार, भ्रमण करके, फिर अपने नगर में आकर (उसी) सेठ को बोला, "हे सेठ जी! दीजिये मेरी वह तुला रूपी धरोहर!" वह बोला, "अरे! वह तुम्हारी तुला नहीं है। (उसे तो) चूहों ने खालिया।" जीर्णधन बोला, "हे सेठ जी! तेरा दोष नहीं, यदि चूहों ने (उसे) खा लिया है। यह संसार ऐसा ही है। यहां कुछ भी स्थायी (नित्य) नहीं है। किन्तु मैं नदी में स्नान करने के लिए जाऊँगा सो तुम अपने इस धनदेव नामक बालक को, स्नान का सामान हाथ में उठाये हुए को मेरे साथ भेज दो।" वह चोरी के भय से उससे शंकित हुआ अपने पुत्र को बोला, "बेटा, यह तेरा चाचा स्नान के लिए जायगा, सो (तुम) इसके साथ स्नान की वस्तुएँ लेकर जाओ"।

इसके पश्चात, वह वैश्य-बालक, स्नान के साधनों को लेकर प्रसन्नचित्त उस अभ्यागत (अतिथि) के साथ चल पड़ा। ऐसा किये जाने पर, वह बनिया स्नान करके, उस बालक को नदी की गुफा में डालकर और उसके द्वार को एक भारी शिला से ढांप कर, शीघ्र ही घर आ गया। उस बनिये (सेठ) ने पूछा, "अरे अतिथि! बताओ, मेरा बालक कहां है, जो तेरे साथ नदी को गया था।" वह बोला, "नदी तट पर से उसे शिकरे (बाज) ने उठा लिया।" सेठ बोला, "मिथ्या वादी! (झूठे) क्या कहीं बाज बालक हर ले जाने को समर्थ हो सकता है? सो, दे मेरे पुत्र को। नहीं तो मैं राजदरबार में निवेदन (प्रार्थना) करूँगा।" वह बोला, "जैसे बाज बालक को नहीं ले जाता, वैसे ही चूहे भी भारी लोहे की बनी तुला को नहीं खा

सकते। इसलिए, ला मेरी तुला, यदि (तुझे अपने) बालक से कुछ प्रयोजन (मतलब) है।" इस प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों राजकुल में पहुँचे। वहाँ सेठ बड़े जोर से चिल्ला कर बोला, ' महा पाप !! महा पाप !! इस चोर ने मेरे बालक को चुरा लिया है।" तब न्यायाधिकारी उसे बोले, "अरे ! सेठ के पुत्र को दे दो !" वह बोला, "क्या करूं ? (उस) बालक को बाज़ नदी तट पर से मेरे देखते देखते उड़ा ले गया।" वह सुन कर वे बोले, "आपने सत्य नहीं बोला। क्या बाज बालक को ले जाने में समर्थ हो सकता है ?" वह बोला, श्रीमान् ! सुनिये आप मेरी बात—

जहां सहस्र लोहे की बनी तुला को चूहे खा जाते हैं, वहां हे राजन् ! बाज भी बालक को उड़ा ले जासकता है, इसमें सन्देह नहीं (होना चाहिये)।"

वे बोले, "यह कैसे ?" तब सेठ ने (उन) सभासदों के आगे प्रारम्भ से सारा वृत्तान्त बता दिया। इसके पश्चात् उन्होंने खूब हंसकर उन दोनों को परस्पर समझा बुझाकर, तुला और बालक को वापिस दिलवा कर सन्तुष्ट कर दिया।

विप्र मनोरथ पूर्ति कथा

(ब्राह्मण का मनोरथ पूरा होने की कथा)

शब्दार्थ—पुनरपि=फिरभी। पुत्तलिका=पुतली। निदधाति=रखता है। यावत्=जबतक। तावत्=तबतक। अब्रवीत्=बोली। मनुष्यवाचा=मनुष्य की वाणी से। शौर्यौदार्य सत्वादिक सादृश्यम्=शूरता, उदारता, बल आदि की समानता (शौर्य+औदार्य, सत्व+आदिक)। समुपविश=बैठजा। वदतिस्म=कहता था।

चारानाहूय=चरों को बुला कर। एकदा=एकबार। भवन्तः=आप सब। कुर्वन्तः=करते हुए। विलोकयन्तु=देखें। परिभ्रमन्नागतः=घूमता हुआ आया। क्रियते=किया जाता है। कृष्णमुदकम्=काला जल।

निःसरति = निकलता है। महति होमकुण्डे = बड़े भारी यज्ञकुण्ड में। क्रियन्ति = कितने ही। अतीतानि = व्यतीत होगये। ज्ञायते = जाना जाता है। सह = साथ। सम्भाषते = वार्तालाप करता है। दृष्टम् = देखा। अवादीत् = बोला। जगदम्बिका = दुर्गा। निवसति = रहती है। इत्युक्त्वा = यह कह कर। विधाय = करके। नमस्कृत्य = नमस्कार करके। अवोचत् = बोला। आरभ्य = आरम्भ करके। कति = कितने। ब्राह्मणेन उक्तम् = ब्राह्मण ने कहा। कुर्वतः = करते हुए के। वर्षशतम् = सौ वर्ष। अभूत् = हो गया। नाभवत् = नहीं हुई। स्मृत्वा = स्मरण करके। अक्षिपत् = गिराता था। तदाऽपि = तब भी (तदा + अपि)। स्वशिरः = अपने सिर को। दास्यामि = दूंगा। बुद्ध्या = विचारसे। सन्धाति = सन्धान करता है, वार करने को तानता है। तावदन्तराले = उतने ही बीच में। धृत्वा = पकड़ कर, धारण करके। अस्मि = हूं। वृणीस्व = मांगो और पाओ। राज्ञा = राजाने। बहुकालं = बहुत समय तक। नापराध्यति = अपराध (अपकार) नहीं करता। स्खलितः = च्युत हुआ, गिरा। अस्मिन् = इस पर। तथाविधः = वैसा। अर्चना प्रकारः = पूजाविधि। प्रसन्नोऽसि = प्रसन्न हो। तयोक्तम् = उसने कहा। भावो = भक्ति। भवामि = होती हूं। भवसि = होती हो।

दैवे = भाग्य में। दैवज्ञे = ज्योतिषी में। भेषजे = औषध में। यादृशी = जैसी। तादृशी = वैसी। क्रियते = विद्यमान है। पाषाणे = पत्थर में। मृण्मये = मट्टी की मूर्ति में। भावे = मन की भावनामें। तस्मात् = इसलिये।

पूरय = पूर्ण कर। तर्हि = तो। महाद्रुम इव = बड़े वृक्षके समान। सहित्वा = सहकर। परिश्रमोच्छेदम् = थकावट की शान्ति को। करोषि = करते हो। अन्यस्य = दूसरे की। च आतपे = और धूप में। परार्थे = दूसरे के लिये। वर्तन्ते = वर्तते हैं। स्तुत्वा = प्रशंसा करके। पूरयतिस्म = पूर्ण करती थी। जगाम = गया। इमां = इसको। विधं = प्रकार के को। तूष्णीम् = चुप। आसीत् = था।

अर्थ—किसी राजा जब तक दूसरी पुतली के मस्तक पर (अपने) चरण रखता है, तब तक वह पुतली इसी प्रकार मनुष्य की वाणी से

राजा को बोली, "हे राजन्! विक्रमादित्य के शूरता, उदारता और बल आदि की समानता यदि तुझ में है, तो इस सिंहासन पर बैठजा।" भोजराज ने कहा "ऐ पुतली! बताओ उस विक्रमादित्य के शौर्य और औदार्य आदि की कथा।"

वह कहती है, "हे राजन्! सुनिये! एक बार राजा विक्रमादित्य राज्य का पालन करता हुआ, दूतों को बुला कर बोला, "हे दूतो! आप सब पृथ्वी का भ्रमण करते हुए, जहाँ जहाँ भी किसी आश्चर्यजनक दृश्य या तीर्थ विशेष को देखें, उसे मुझे बतायें। मैं वहाँ जाऊँगा।" इस प्रकार समय व्यतीत होने पर, एक बार देशान्तर में घूमता हुआ आया कोई दूत राजा को बोला, 'हे राजन्! चित्रकूट पर्वत के पास तपोवन के बीच में, (एक) अति सुन्दर मन्दिर है। वहाँ पर्वत के उच्चशिखर से स्वच्छ जल की धारा निकल कर बहती है। जो वहाँ स्नान करता है, वह पुरुष पुण्यवान् होता है। और भी, वहाँ कोई ब्राह्मण बड़े भारी यज्ञकुण्ड में हवन करता है, उसको (ऐसा करते हुए वहाँ) कितने वर्ष व्यतीत हो गये, यह जाना नहीं जाता। प्रतिदिन कुण्ड से बाहर निकाल कर रखी हुई भस्म (राख) पर्वताकार है (पर्वत जैसा ऊँचा ढेर लगा है)। वह ब्राह्मण किसी के साथ बात चीत नहीं करता। इस प्रकार (मैंने एक) बड़ा आश्चर्यजनक स्थान देखा है"। यह सुन कर वह राजा अकेला उसके साथ उस स्थान को (पर) जाकर, अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुआ, बोला, "अहो! बड़ा पवित्र है यह स्थान। यहाँ साक्षात् (प्रत्यक्ष) दुर्गा माता निवास करती है। इस स्थान को देख कर मेरा मन निर्मल हो गया"। यह कह कर वहाँ झरने के जल में स्नान करके, देवता को नमस्कार करके, जहाँ ब्राह्मण हवन करता है वहाँ जाकर (राजा) ब्राह्मण को बोला, "हे ब्राह्मण! हवन आरम्भ किये कितने वर्ष हो गये?" ब्राह्मण ने कहा "होम करते हुए मुझे सौ वर्ष हो गये, तो भी देवता (देवी) प्रसन्न नहीं हुई।" यह सुन कर राजा ने देवी का स्मरण करके स्वयं कुण्ड में आहुति डाली (आहुति डालता था)। तब भी देवी प्रसन्न नहीं हुई। इसके पश्चात् "अपना सिर दूँगा" इस विचार से ज्यों ही राजा (अपने) गले पर खड्ग तानता है कि इतने ही बीच में देवी खड्ग को पकड़ कर बोली, "हे राजन्!

(मैं) प्रसन्न हूँ, वर प्राप्त कर।" राजा ने कहा, "हे देवि! यह ब्राह्मण बहुत समय से हवन करता है, किसी के प्रति अपराध नहीं करता (किसी का अपकार नहीं करता) और नाहीं किसी नियम से पतित हुआ है, तो भी इस पर (तुम) क्यों प्रसन्न नहीं होती हो? मेरा ही अथवा कौनसा वैसा पूजा का प्रकार (ढंग) है, जिससे (तुम) शीघ्र प्रसन्न हो गई हो?" उसने कहा, "हे राजन्! इसके चित्त में भाव (शुद्ध भक्ति भाव) नहीं है, इस लिये प्रसन्न नहीं होती हूँ। कहा भी है—

मन्त्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषी में, औषध में और गुरु में, जिसकी जैसी भावना (भाव) होती है, उसको वैसी ही सिद्धि (सफलता) होती है।

देवता न काठ में विद्यमान है, न पत्थर में और नाहीं मिट्टी की मूर्ति में। देवता तो भाव में (मन के शुद्ध भाव में) विद्यमान है, अतः भाव ही (उसकी प्रसन्नता का) कारण है।"

राजा बोला, "यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हुई है तो इस ब्राह्मण के मनोरथों को पूर्ण कर।" वह बोली, "हे राजन्! परोपकारी (किसी) बड़े भारी वृक्ष के समान (तू) अपने शरीर से कष्ट सह कर (दूसरे के) श्रम को दूर करता है। कहा भी है—

ये महान् वृक्ष सच-मुच अन्य के लिए छाया करते हैं और स्वयं धूप में ठहरते हैं। एवं दूसरों के लिए ही फलते हैं। परोपकार के लिए ही नदियां बहती हैं, गउएं दूध देती हैं। वृक्ष भी परोपकार के लिए फलते हैं, यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है।

इस प्रकार राजा की स्तुति [प्रशंसा] करके, [देवी ने] ब्राह्मण का मनोरथ पूर्ण कर दिया। राजा भी अपनी नगरी को चला गया।

इस कथा को सुना कर पुतली भोज को बोली, "राजन्! यदि इस प्रकार का धैर्य [हिम्मत] विद्यमान है, तो इस सिंहासन पर बैठ जा।" राजा चुप था।

सिंह दिलीपयोः सम्वादः

(सिंह और दिलीप का वार्तालाप)

शब्दार्थ—पुरः = आगे की। अंगीकृत्य = स्वीकार करके। संस्थाप = ठहर। पीतप्रतिबद्धवत्सां = जिसका बच्छा (दूध) पी चुका है और बांध दिया

गया है, ऐसी को। मुमोच=खोलता था। छायेव=छाया के समान। अन्वगच्छत्=पीछे चला। आस्वादवद्भिः=स्वाद वाले, स्वादिष्टों से। कवलैः=ग्रासों से। कण्डूयनैः=खाज करने से। दंशनिवारणैः=डांस (मच्छर) हटाने से। अन्येद्युः=दूसरे दिन। जिज्ञासमाना=जानने की इच्छा करती हुई। गंगाप्रपातान्तविरूढ़शष्पां=गंगा के स्रोत के अन्त तक जिस पर घास चढ़ी हुई है, ऐसी को। प्रविवेश=प्रविष्ट हो गई। हिंस्रैः=हिंसकों द्वारा। दुष्प्रधर्ष्या=कठिनता से जिस पर विजय पायी जाय। अपरतश्च=और दूसरी ओर। गुहाशयः=गुफा में सोने वाला। आक्रमत्=आक्रमण कर दिया। आकर्ण्य=सुन कर। निचिक्षेप=डाली, डालता था। आलोक्य=देखकर। विस्मय क्रोधाविष्टः=आश्चर्य और क्रोध से भरा। तूणीरात्=तरकश से। प्रायतत् =प्रयत्नकरता था। सायकपुंख एव=बाण की पूंछ पर ही। तस्थौ=ठहर गया। हस्तावरोधेन=हाथ द्वारा रोकने के साथ। विस्मापयन्=विस्मितबनाता हुआ।

माकुरु=मत कर। मयि=मेरे ऊपर। आरोहति=चढ़ता है। वृषभम्=बैल को (पर)। पुरस्तात्=आगे। जलसेकेन=जलसिंचन द्वारा। कण्डूयमानेन=खजाते हुए ने। त्वक्=वक्कल, चमड़ी। समुत्पाटिता=उखाड़ दी। शुशोच=शोक करती थी। कालादारभ्य=काल से आरम्भ करके। विधाय=करके। रक्षार्थे=रक्षा के लिये। अंकागतसत्ववृत्ति=जो अपनी गोदी में गुफा में आये पशु पर निर्वाह करता हो। तदियं=सोयह। पारणा=व्रतान्त भोजन, रोजा खोलना। विहाय=छोड़कर। निवर्तस्व=लौट जा। परिवादः =अपयश। दैवकार्ये=देवता के या भाग्य के कार्य में। पौरुषस्य=पुरुषार्थ का। तत्याज=छोड़ता था। जगाद=बोला। मदुक्तम्=मेरा कहा। वाच्यम्=कहना चाहिये। वदामि=कहता हूँ। इदमपि=यह भी। समक्ष=सामने। वराकी=तुच्छ बेचारी। त्यज=छोड़ दे। वृत्ति=आहार, निर्वाह। निर्वर्तयिस्व=पूर्ण करो। भुङ्क्ष्व=खाले। प्रत्युवाच=उत्तर में बोला। एकातपत्र =एकच्छत्र। कृते=लिए। त्यक्तुं=छोड़ने के लिए। विवेकविक्लोऽसि=भले बुरे के ज्ञान में मूर्ख हो। प्रतीयते=प्रतीत होता है। कोटिशः=करोड़ों। घटोध्नी=घड़ा भर दूध देने वाली। गाः=गायों को। दत्वा=देकर। क्षतिम्=नुकसान को। जगतः=संसार का। स्यात्=हो जाय। रक्ष=रक्षा कर। जहीहि=छोड़ दे। निरीक्ष्यमाणो=देखा जाता हुआ। सामान्या=

साधारण। एनामाक्रमितुं = इस पर आक्रमण करने के लिए। शक्नुवन्ति = समर्थ हो सकते। प्रहृतम् = प्रहार किया। निष्क्रियेण = बदले में विनियम द्वारा। विहता = विघ्नयुक्त। स्यात् = हो। क्रियार्थः = तपस्या का साधन गौ। अक्षतः ॥ बिना घाव के। रक्ष्यम् = रक्षणीय को। विनाश्य = नष्ट करके। स्थातुम् = ठहरने के लिये। अर्हति = जंचता है योग्य होता है।

आमिषस्य = मांस के। पिण्डमिव = गोले के समान। हरये = सिंह के लिए। समुपानयत् = भेंट करता था। अवाङ् मुखस्य = नीचे मुंह वाले के। विद्याधर = देवताओं के कलाकार गन्धर्व आदि। पपात = गिरी।

उत्तिष्ठ = उठ। अमृतायमानम् = अमृतजैसा लगता हुए को। निशम्योत्थितः = सुनकर उठा हुआ। ददर्श = देखता था। प्रीता = प्रसन्न। सुदक्षिणायै = सुदक्षिणा (दिलीप पत्नी) के लिये। निवेद्य = निवेदन करके। अमन्दानन्दम् = बहुत आनन्द को। अविन्दत = प्राप्त होता था।

अर्थ—गुरु की आज्ञा को स्वीकार करके, सम्राट् दिलीप सवेरे उठकर, जिसके बछड़े को दूध पिला कर बांध दिया गया था ऐसी वशिष्ठ की नन्दिनी नामक गौ को वन के लिए मुक्त करता था (वन में चरने के लिए खोल दिया)। राजा (स्वयं) छाया के समान उसके पीछे पीछे चला।

इस प्रकार स्वादिष्टतृणों के ग्रासों द्वारा, खुजाने के द्वारा, मच्छर दूर करने के द्वारा, ठीक ठीक गमनों द्वारा (स्वच्छन्द चलने देकर) वह उसकी सेवा करता था।

दूसरे दिन, अनुचर (सेवक) के भाव को जानना चाहती हुई नन्दिनी, गंगा के गिरने के स्थान तक जिसमें घास उगी हुई है ऐसी हिमालय की गुफा में घुसकर गई। इसको हिंसक (पशु) मन से भी हानि नहीं कर सकते (हिंसक जीवों द्वारा मन से भी तिरस्करणीय नहीं है) यह सोचकर राजा पर्वत की शोभा देखने में लीन हो गया। और दूसरी ओर, गुफा में निवास करने वाले सिंह ने जबरदस्ती (बलात्) नन्दिनी पर आक्रमण कर दिया। और तब गौ के करुणापूर्ण आर्त क्रन्दन को सुनकर, राजा ने उधर दृष्टि फेरी। नन्दिनी के ऊपर वर्तमान सिंह को देखकर, आश्चर्य और क्रोध में भरा हुआ राजा शीघ्रता

से तरकश से बाण निकालने का प्रयत्न करने लगा, पर उसका दायां हाथ बाण की पूँछ पर चित्रलिखित-सा जहाँ का तहाँ रह गया।

इसके पश्चात्, हाथ से हटाने के साथ, क्रोध से व्याप्त और आश्चर्य से चकित राजा को अत्यन्त विस्मित करता हुआ सिंह मनुष्य की वाणी में उसको बोला —

"हे राजन्! परिश्रम (कष्ट) नहीं करो। मेरे ऊपर तुम्हारा बाण के प्रहार करने का परिश्रम व्यर्थ ही है। मैं कुम्भोदर नामक शिव का गण हूँ। शिव मेरी पीठपर पांव रखकर बैल पर चढ़ते हैं। सामने तुम जिस देवदारु के वृक्ष को देखते हो, इसे शिव ने पुत्र के समान माना है, पार्वती ने स्वयं जल सींचने के द्वारा इसे बढ़ाया है। एक बार कपोल को खुजाते हुए जंगली हाथी ने इसका वक्कल उधेड़ दिया था। तब पार्वती ने अपने पुत्रके समान इसके लिए बहुत शोक किया, उसी समय से लेकर शिवने मुझे सिंह बनाकर इसकी रक्षा के लिए गुफा में नियुक्त कर दिया। मैं अपनी गोद (गुफा) में आये पशु पर जीवन निर्वाह करने वाला हूँ। सो यह गौ बहुत देर के बाद यहाँ आई हुई अब मेरा व्रतान्त (व्रत खोलने का) भोजन बनेगी। अतः तुम अब लज्जा छोड़ कर लौट जाओ, इसमें तुम्हारा अपयश नहीं है। यहाँ देवताओं के कार्य में शस्त्र या पुरुषार्थ का (कोई) प्रभाव नहीं होता है।'

सिंह के इस वचन को सुनकर राजा ने लज्जा छोड़ दी और बोला, "हे सिंह, यद्यपि मेरी कहीं बात हास्यकर होगी, तो भी कहनी चाहिये, क्योंकि आप सबके हृदय के भाव को जानते हैं। इसलिए कहता हूँ। वह शिव भी मेरे लिए माननीय हैं और यह भी गुरु का धन आँखों के सामने नष्ट होता हुआ उपेक्षणीय नहीं है (इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती)। अतः तू इस बेचारी को छोड़ दे। मेरे शरीर से (तू) अपने शरीर के निर्वाह (आहार) को पूरा कर, उसके स्थान में मुझे ही खालो।"

तब प्रत्युत्तर में सिंह बोला—"हे राजन्! संसार का एकच्छत्र राज्य है, नई आयु है और यह सुन्दर शरीर है, इन सबको एक गाय के निमित्त छोड़ने के इच्छुक आप मुझे [अपने] भले बुरे के ज्ञान में मूढ़ प्रतीत होते हैं। तू तो करोड़ों

गायों को देकर इस गाय की हानि को पूरा कर देगा [कर सकोगे] । लेकिन तू जगत् का स्वामी है । अतः तेरे विनाश से संसार के सर्वस्व का विनाश हो जायगा । इसलिये तू अपने शरीर की रक्षा कर । इस [गाय] को छोड़दे ।"

तब नन्दिनी के द्वारा बड़ी करुणाभरी दृष्टि द्वारा देखा जाता हुआ दिलीप फिर बोला, "हे मृगराज ! [सिंह !] यह साधारण गौ नहीं है । यह कामधेनु की पुत्री कामधेनु [सब इष्ट पदार्थों को देने वाली दिव्य गौ] ही है । साधारण हिंसक जीव इस पर आक्रमण करने के लिए समर्थ नहीं हैं । तूने तो शिव के प्रभाव से इस पर प्रहार किया । सो, मैं इसके बदले में [विनिमय में] अपना शरीर देता हूँ । इस प्रकार तेरे अवान्त भोजन में भी विघ्न नहीं होगा और मुनि की क्रिया [तपस्या आदि धार्मिक कृत्य] आदि का यह साधन भी नष्ट नहीं होगा । आप भी जानते हैं कि स्वयं बिना घाव खाये, रक्षणीय वस्तु को खोकर, स्वामी के आगे खड़ा होने के योग्य नहीं होता रक्षक । अतः इसकी मुक्ति के विषय में मेरी प्रार्थना को तू स्वीकार करले ।"

ऐसा कह कर दिलीप ने अपने शरीर को एक मांसपिण्ड [गोले] के समान सिंह की भेंट कर दिया । और इसके पश्चात्, उसके नीचे झुके हुए मुख पर विद्याधरों के हाथ से गिराई पुष्प वर्षा पड़ी [हुई] ।

इसके पश्चात्—

"उठ पुत्र !" इस अमृतरूप वचन को सुन कर राजा अपनी माता के समान गाय को देखता था, सिंह को नहीं ।

तब प्रसन्न वर्णा नन्दिनी ने उसको वर प्रदान किया । सफल मनोरथ राजा उस [गाय] के साथ वन से आश्रम को आकर, गुरु और सुदक्षिणा (दिलीप पत्नी) को वर प्रदान का हाल सुनाकर परम आनन्द प्राप्त करता था ।

शरद् वर्णनम्

शरद् ऋतु का वर्णन

१. काशांशुका..रूपरम्यः ।।

शब्दार्थ—काशांशुका = कांसी [एक श्वेत पुष्पों का वृक्ष] के आँचल वाली । विकच = विकसित । मनोज्ञ = सुन्दर । रव = शब्द । नूपुर =

विद्रुश्रा । श्रापक्वशालि = अच्छी तरह पके हुए धान । तनुगात्रयष्टिः = कृशशरीर वाली । प्राप्ता = श्रागई ।

विषय—शरद् ऋतु का नव वधू के रूपमें वर्णन किया गया है।

अन्वय—सरल है। यथालिखित क्रम से है।

अर्थ—काशपुष्पों के श्राँचल वाली, विकसित कमल के समान (रूप) सुन्दर मुख वाली, मद माते हंसों के शब्द रूपी बिछुवों के नाद से मनोरम, खूब परिपक्व धान्यों से मनोहर और कृश शरीर वाली, रूप से रमणीय बनी हुई शरद् ऋतु नववधू के समान श्राई है।

२—काशैर्मही.........................मालतीभिः ॥

शब्दार्थ—शिशिरदीधितिना = चन्द्रमा से। रजन्यः = रात्रियाँ। सरितः = नदियों के। सरांसि = सरोवर। सप्तच्छदैः = वृक्ष विशेषों से। वनान्ताः = वन प्रान्तभाग। शुक्ली = सफेद। मालतीभिः = चमेली की लताओं द्वारा।

विषय—शरत् की स्वच्छ श्वेत प्रकृतिका वर्णन है।

अन्वय—काशैर्मही, शिशिरदीधितिना रजन्यो, हंसैः सरितां जलानि, कुमुदैः सरांसि, कुसुमभारनतैः सप्तच्छदैः वनान्ताः च मालतीभिः उपवनानि शुक्ली कृतानि।

अर्थ—(श्वेत बना दिये का अन्वय सब के साथ करिये) काश पुष्पों ने पृथ्वी को; चन्द्रमाने रातों को, हंसोंने नदियों के जलों को, कमलों ने सरोवरों को, पुष्प भार से झुके हुए सप्तच्छदों (वृक्षविशेषों) ने वन्य प्रदेशों को और मालती की लताओं ने बागों को श्वेत बना दिया है।

३. व्योम.........................वीज्यमानः॥

शब्दार्थ—व्योम = श्राकाश। क्वचिद् = कहीं। रजत = चाँदी। मृणाल = भिस। त्यक्ताम्बुभिः = जिन्होंने जल को छोड़ दिया है, उन्होंने अर्थात् निर्जलों ने। शतशः = सैकड़ों। प्रयातैः = चलेहुओंने। पयोदैः = मेघोंसे, द्वारा।

राजेव=राजा के समान, राजा+इव । उपवीज्यमानः=हवा किया जाता हुआ, जिसको पंखे आदि से हवा की जा रही हो।

विषय—इस पद्य में कवि ने शरत् के श्वेत, अनेक दिशाओं में घूमने वाले बादलों से सुशोभित शरदाकाश की ऐसे राजा से उपमा की है जिस पर श्वेत चामरें डुलाई जा रही हों।

अन्वय—क्वचित् व्योम रजत शंखमृणालगौरैः, त्यक्ताम्बुभिः, लघुतया शतशः प्रयातैः, पवनवेग चलैः पयोदैः, चामरवरै रुपवीज्यमानः राजा इव संलक्ष्यते ।

अर्थ—कहीं पर, आकाश चाँदी शंख और भिस जैसे गौर [श्वेत] मुक्तजल [निर्जल], पवन के वेग से चंचल बने हुए और हल्केपन के कारण सैकड़ों ओर को चले हुए बादलों से, श्रेष्ठ चामरों की हवा लेते हुए राजा के समान दिखाई देता है।

भिन्नाञ्जन..............................कस्ययूनः !!

शब्दार्थ—भिन्न=व्याप्त । अञ्जन=नीलवर्ण । प्रचय=समूह । बन्धूक=एक लाल पुष्प विशेष । रचितारुणिता=बनाई है लालिमा जिसकी, ऐसी । वप्राश्च=नदी तट । प्रोत्कण्ठयन्ति=अत्यन्त उत्कण्ठित (उत्सुक) करते हैं । यूनः=युवा के ।

विषय—शरदाकाश की स्वच्छता, चारों ओर व्याप्त नीलिमा का और लाल फूलों से सुशोभित भूमि का वर्णन है ।

अन्वय—भिन्नाञ्जन प्रचयकान्ति मनोज्ञं नभः, च बन्धूक पुष्प रचितारुणिता भूमिः, च चारु कमलावृत भूमिभागाः, वप्राश्च भुवि कस्य यूनः मनः न प्रोत्कण्ठयन्ति ?

अर्थ—(चारों ओर) व्याप्त नीलिमा की प्रभूत शोभा वाला मनोहर आकाश, बन्धूक पुष्पों से लाल बनी हुई भूमि, और सुन्दर कमलों से सुशोभित भूभाग वाले नदीतट (ये सब) संसार में किस युवा के मन को समुत्कण्ठित नहीं कर देते ?

५. मन्दानिल...कोविदारः ॥

शब्दार्थ--मन्दानिल = मन्दवायु। आकुलित = चंचल। द्विरेफ = भ्रमर। मधु प्रसेकः = पुष्परस का सिंचन। विदारयति = फाड़ता है। कोविदारः = लालकचनार।

विषय--पुष्पित कोविदार का वर्णन है।

अन्वय--मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः,पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः, मत्तद्विरेफ परिपीत मधु प्रसेकश्च कोविदारः कस्य चित्तं न विदारयति ?

अर्थ--मन्द मन्द वायु से प्रकम्पित और अतएव अधिक सुन्दर शाखा के अग्रभाग वाला, जिसके कोमल दलों में पुष्पों के समूह खिले हुए हैं, मस्त भ्रमरों द्वारा जिसके मधु सिंचन (स्रवण) का पान किया जा रहा है ऐसा कोविदार(लाल कचनार) का वृक्ष किसके मन को नहीं विदीर्ण करता है ?

६. आकम्पयन्...............नभस्वान् ॥

शब्दार्थ--आकम्पयन् = कँपाता हुआ। फलभरानत = फलों के भार से झुके हुए। शालिजालान् = धानों के जालों को। आनर्तयन् = नचाता हुआ। कुसुमावनम्रान् = पुष्पों से अवनत। उत्फुल्लपंकजवनां = विकसित कमलों के वन वाली को। नलिनीं = कमलिनी को। विधुन्वन् = कम्पित करता हुआ। यूनाम् = युवाओं का। प्रसभं = हठात्। नभस्वान् = वायु।

विषय--शरत्कालीन वायु का वर्णन है, वृक्षों, कमलों और धानों के खेतों को लहराता हुआ बहता है।

अन्वय--फलभरानत शालिजालान् आकम्पयन्, कुसुमावनम्रान् तरुवरान् आनर्तयन्, उत्फुल्ल पंकजवनां नलिनीं विधुन्वन् नभस्वान् यूनां मनः प्रसभं चालयति।

अर्थ--फल के भार से झुके हुए धान्यसमूहों को कम्पायमान करता हुआ, पुष्पों से अवनत बने श्रेष्ठ वृक्षों को नचाता हुआ औरविकसित कमलों के वन वाली कमलिनी को धुनता हुआ (प्रकम्पित करता हुआ), वायु युवाओं के मन को हठात् चंचल बना देता है।

७ सोन्माद हंस...................सरांसि ॥

शब्दार्थ--सोन्माद = मदमस्त। मिथुनैः = जोड़ों से। उद्गतवीचि-

राजेव = राजा के समान, राजा + इव । उपवीज्यमानः = हवा किया जाता हुआ, जिसको पंखे आदि से हवा की जा रही हो।

विषय—इस पद्य में कवि ने शरत् के श्वेत, अनेक दिशाओं में घूमने वाले बादलों से सुशोभित शरदाकाश की ऐसे राजा से उपमा की है जिस पर श्वेत चामरें डुलाई जा रही हों।

अन्वय—क्वचित् व्योम रजत शंखमृणालगौरैः, त्यक्ताम्बुभिः, लघुतया शतशः प्रयातैः, पवनवेग चलैः पयोदैः, चामरवरै रुपवीज्यमानः राजा इव संलक्ष्यते।

अर्थ—कहीं पर, आकाश चाँदी शंख और भिस जैसे गौर [श्वेत] मुक्तजल [निर्जल], पवन के वेग से चंचल बने हुए और हल्केपन के कारण सैकड़ों ओर को चले हुए बादलों से, श्रेष्ठ चामरों की हवा लेते हुए राजा के समान दिखाई देता है।

भिन्नाञ्जन..............................कस्य यूनः !!

शब्दार्थ—भिन्न = व्याप्त। अञ्जन = नीलवर्ण। प्रचय = समूह। बन्धूक = एक लाल पुष्प विशेष। रचितारुणिता = बनाई है लालिमा जिसकी, ऐसी वप्राश्च = नदी तट। प्रोत्कण्ठयन्ति = अत्यन्त उत्कण्ठित (उत्सुक) करते हैं यूनः = युवा के।

विषय—शरदाकाश की स्वच्छता, चारों ओर व्याप्त नीलिमा का और लाल फूलों से सुशोभित भूमि का वर्णन है।

अन्वय—भिन्नाञ्जन प्रचयकान्ति मनोज्ञं नभः, च बन्धूक पुष्प रचितारुणिता भूमिः, च चारु कमलावृत भूमिभागाः, वप्राश्च भुवि कस्य यूनः मनः न प्रोत्कण्ठयन्ति ?

अर्थ—(चारों ओर) व्याप्त नीलिमा की प्रभूत शोभा वाला मनोहर आकाश, बन्धूक पुष्पों से लाल बनी हुई भूमि, और सुन्दर कमलों से सुशोभित भूभाग वाले नदीतट (ये सब) संसार में किस युवा के मन को समुत्कण्ठित नहीं कर देते ?

५. मन्दानिला..................................कोविदारः ॥

शब्दार्थ--मन्दानिल = मन्दवायु । आकुलित = चंचल । द्विरेफ = भ्रमर । मधु प्रसेकः = पुष्परस का सिंचन । विदारयति = फाड़ता है । कोविदारः = लालकचनार ।

विषय—पुष्पित कोविदार का वर्णन है ।

अन्वय--मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः,पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः, मत्तद्विरेफ परिपीत मधु प्रसेकश्च कोविदारः कस्य चित्तं न विदारयति ?

अर्थ—मन्द मन्द वायु से प्रकम्पित और अतएव अधिक सुन्दर शाखा के अग्रभाग वाला, जिसके कोमल दलों में पुष्पों के समूह खिले हुए हैं, मस्त भ्रमरों द्वारा जिसके मधु सिंचन (स्रवण) का पान किया जा रहा है ऐसा कोविदार(लाल कचनार) का वृक्ष किसके मन को नहीं विदीर्ण करता है ?

६. आकम्पयन्...............नभस्वान् ॥

शब्दार्थ—आकम्पयन् = कँपाता हुआ । फलभरानत = फलों के भार से झुके हुए । शालिजालान् = धानों के जालों को । आनर्तयन् = नचाता हुआ । कुसुमावनम्रान् = पुष्पों से अवनत । उत्फुल्लपंकजवनां = विकसित कमलों के वन वाली को । नलिनीं = कमलिनी को । विधुन्वन् = कम्पित करता हुआ । यूनाम् = युवाओं का । प्रसभं = हठात् । नभस्वान् = वायु ।

विषय—शरतकालीन वायु का वर्णन है, वृक्षों, कमलों और धानों के खेतों को लहराता हुआ बहता है ।

अन्वय—फलभरानत शालिजालान् आकम्पयन्, कुसुमावनम्रान् तरुवरान् आनर्तयन्, उत्फुल्ल पंकजवनां नलिनीं विधुन्वन् नभस्वान् यूनां मनः प्रसभं चालयति ।

अर्थ—फल के भार से झुके हुए धान्यसमूहों को कम्पायमान करता हुआ, पुष्पों से अवनत बने श्रेष्ठ वृक्षों को नचाता हुआ औरविकसित कमलों के वन वाली कमलिनी को धुनता हुआ (प्रकम्पित करता हुआ), वायु युवाओं के मन को हठात् चंचल बना देता है ।

७ सोन्माद हंस...................सरांसि ॥

शब्दार्थ—सोन्माद = मदमस्त । मिथुनैः = जोड़ों से । उद्गतवीचि-

माला=उठती तरंगमाला वाले।

विषय—हंस मिथुनों और कमल वनों से सुशोभित तरंगित सरों का वर्णन है।

अन्वय—सोन्माद हंस मिथुनै रुपशोभितानि, स्वच्छ प्रफुल्ल कमलोत्पल भूषितानि, मन्द प्रभात पवनोद्गत वीचिमालानि सरांसि हृदयं सहसा उत्कण्ठयन्ति।

अर्थ—मदमाते हंसों के जोड़ों से सुशोभित, निर्मल खिले हुए कमल और नील कमलों से सुभूषित और मन्द मन्द प्रभात कालीन वायु से जिनमें तरंगावलियाँ उठ रही हैं, ऐसे सरोवर हृदय को बलात् उत्सुक (चंचल) कर देते हैं।

८. नष्टं धनुः····················मयूराः ॥

शब्दार्थ—नष्टम्=विलीन हो गया। बलभिदः=इन्द्र का। जलदोदरेषु =मेघों के बीच में। सौदामिनी=बिजली। स्फुरति=चमकती है। वियत्-पताका=आकाश की ध्वजा रूप। बलाका=बगुलों की पंक्ति। धुन्वन्ति=कम्पित करती हैं।

विषय—वर्षा काल के साथ ही उसके चिन्ह भी लुप्त हो गये हैं।

अन्वय—जलदोदरेषु बलभिदोर्धनुर्नष्टम्, अद्य वियत्पताका सौदामिनी न स्फुरति,बलाकाः पक्षपवनै नभो न धुन्वन्ति,उन्नतमुखाःमयूरा गगनं न पश्यन्ति।

अर्थ—मेघों के बीच में (वर्तमान) इन्द्र धनुष विलीन हो चुका है, आकाश की ध्वजारूप विद्युत आज नहीं चमकती है, हंस पँक्तियां (अपने) पँखों की हवा से आकाश कम्पित नहीं करतीं, ऊपर मुख उठाये मोर आकाश की ओर (मेघों की आशा से) नहीं देखते।

९. नृत्य प्रयोग·················कुसुमोद्गमश्रीः ॥

शब्दार्थ—नृत्यप्रयोग=नाचने की क्रिया। शिखिनः=मोरों को। हंसानुपैति=हंसों के पास पहुँचती हैं। मधुरप्रगीतान्=मधुर गीतों वालों को। कदम्ब कुटजार्जुन सर्जनीयान्=वृक्ष विशेषों के नाम हैं·········! सप्तच्छदान्=वृक्षविशेष······। उपगता=प्राप्तहोगई। कुसुमोद्गम श्रीः=पुष्प विकास की शोभा। शेफालिका=वृक्षविशेष······। स्वस्थस्थित=स्वतंत्रता से

स्थित। अण्डजः=अण्डों से उत्पन्न होने वाले जीव, पक्षी। प्रतिनिनादितानि =प्रतिगुंजित।

अन्वय—मदनो, नृत्य प्रयोग रहितान् शिखिनः विहाय, मधुरप्रगीतान् हंसानुपैति। कुसुमोद्गमश्रीः कदम्ब कुटजार्जुन सर्जनीयान् मुक्त्वा सप्तच्छदानुपगता।

विषय— शरद् वर्णन है। प्राकृतिक शोभा का चित्र है।

अर्थ—कामदेव नृत्य-क्रिया से रहित (वर्षाकाल समाप्त हो जाने के कारण) मयूरों को छोड़ कर मधुर गीतों वाले हंसों के पास आगया है, (आ जाता है)। पुष्प विकास की शोभा कदम्ब कुटज अर्जुन सर्जनीय ············आदि वृक्ष विशेषों को छोड़ कर सप्तच्छदों (वृक्षविशेषों) के पास आगई है।

१०. शेफालिका··············मनांसि पुंसाम्॥

शब्दार्थ—पर्यन्त=चारों ओर (पास में)। नयनोत्पलानि=नेत्र कमल। पुंसाम्=पुरुषों के। प्रोत्कण्ठयन्ति=विशेष उत्कण्ठित करते हैं। मनांसि=मनों को।

विषय— प्राकृतिक शोभा और वन्य जीवों का वर्णन है।

अन्वय—शेफालिका कुसुमगन्ध मनोहराणि, स्वस्थस्थिताण्डजकुल प्रतिनादितानि, पर्यन्त संस्थित मृगीनयनोत्पलानि, उपवनानि पुंसाम् मनांसि प्रोत्कण्ठयन्ति।

अर्थ—शेफालिका (कली का वृक्ष) के फूलों की सुगन्धि से मन को हरने वाले, स्वच्छन्द स्थित पक्षी समूहों के कलरव से प्रतिगुंजित, आसपास स्थित मृगियों के नयन रूपी कमलों वाले (जिनमें मृगियों के नयन कमल से खिले दिखते हैं), उपवन पुरुषों के मनों को उत्कण्ठित कर देते हैं (किसी की याद में)।

११. कल्हारपत्र·················विधूयमानः।

शब्दार्थ—कल्हारपत्र=पुष्पविशेष। मुहुर्=बार बार। विधुन्वन्=कँपाता हुआ। उपेतः=प्राप्त हुआ। अतितरां=अत्यन्त। पत्रान्त=पत्तों का अग्रभाग। तुहिनाम्बु=बर्फ के कण, ओसबिन्दु। विधूयमानः=बिखेरता हुआ।

विषय—प्रभातकालीन सुगन्धित वायु का वर्णन है।

अन्वय—कल्हारपत्र कुमुदानि मुहुर्विधुन्वन्, तत्संगमात् अधिक शीतलता. मुपेतः पवनः प्रभाते पत्रान्त लग्न तुहिनाम्बु विधूयमानः अतितराम् उत्कण्ठयति।

अर्थ—कल्हारपत्र (वृक्षविशेष) और कुमुदों को प्रकम्पित करती हुई उनके संयोग से और भी अधिक शीतलता को प्राप्त हुई (ठंडी हुई)पवन प्रभातकाल में ओस कणों को बखेरती हुई अत्यन्त उत्कण्ठित करती ।

१२. सम्पन्नशालि............ ..प्रमादम् ॥

शब्दार्थ—सम्पन्न=वृद्धियुक्त। शालि=धान। निचयावृत=समूहों से ढके हुए। प्रचुर=बहुत। ससारसकुलैः=सारस के कुल के साथ। सीमान्तराणि=दिशाएं,दिशामुख...... । जनयन्ति=उत्पन्न करती हैं। नृणाम्=मनुष्यों का।

विषय—हरी भूमि, गायों और दिग्भागों का वर्णन है।

अन्वय—सम्पन्न शालि निचयावृत भूतलानि, स्वस्थस्थित प्रचुर गोकुल शोभितानि; ससारसकुलैः, हंसैः प्रतिनिनादितानि सीमान्तराणि नृणां प्रमोदम् जनयन्ति।

अर्थ—अत्यन्त समृद्ध धान्यों के समूहों से ढके हुए स्थलों वाले, स्वस्थ (हृष्ट-पुष्ट अथवा स्वच्छन्द) स्थित गायों के बहुत समूहों से सुशोभित, सारसों के साथ हंसों के शब्दों से प्रतिध्वनित दिशाओं के अन्तराल (दिग्भाग) पुरुषों को आनन्द देते हैं (आनन्द उत्पन्न करते हैं)।

१३. स्फुट कुमुद........ तारावकीर्णम् ॥

शब्दार्थ—स्फुट=खिलेहुए। चितानाम्=व्याप्त हुए, हुओं के। राजहंसस्थितानाम्=जिनमें राजहंस स्थित हैं, ऐसों के। मरकतमणिभासा=नीलम की चमक वाले से (द्वारा)। वारिणा=जलद्वारा। तोयाशयानाम्=तालाबों को (सरों को)। वहति=धारण करता है। विगतमेघं=मेघों से रहित। अवकीर्ण=व्याप्त हुआ।

विषय—चंद्र तारों से विभूषित और निर्मेघ आकाश की शोभा कमलों से युक्त तालाबों जैसी हो रही है।

अन्वय—चन्द्रतारावकीर्णम्, विगतमेघम्, व्योम, स्फुट कुमुद चितानां राजहंस स्थितानाम् मरकत मणिभासा वारिणा भूषितानां तोयाशयानाम्, अतिशय रूपश्रियं वहति।

अर्थ—चाँद और तारों से खचित (व्याप्त) और मेघों से रहित आकाश खिले कमलो से भरे हुए राजहंसों से युक्त, और नीलम जैसी कान्ति वाले जल से (जल दूर से आकाश के समान नीला दिखाई देता है) अलंकृत सरोवरों की अतिशय शोभा को धारण करता है। (आकाश जल के समान नीला दीखता है, उसमें तारे चांद आदि कमलों जैसे दीखते हैं, राजहंस सरोवरों में भी हैं और आकाश में भी उड़ते हैं आदि।)

१४. शरदि कुमुद''' ''' '''ताराविचित्रम् ॥

शब्दार्थ—शरदि = शरद्ऋतु में। वान्ति = बहती हैं। जलद = बादल। वृन्द = समूह। विगत कलुषम् = निर्मल। अम्भः = जल। श्येन पङ्का = जिसका कीचड़ सूख (श्वेत हो) गया है। धरित्री = पृथ्वी। ताराविचित्रम् = तारों से विचित्र बना।

विषय—प्रकृति की निर्मलता और स्वच्छता का वर्णन है।

अन्वय—शरदि वायवः कुसुमसंगाद् शीता वान्ति, विगतजलद वृन्दा दिग्विभागाः मनोज्ञाः (भवन्ति), अम्भः विगतकलुषम् (भवति), धरित्री श्येन पङ्का (जायते) व्योम विमलकिरणचन्द्रं, ताराविचित्रं (भवति)।

अर्थ—शरद् ऋतु में, हवाएं पुष्पों के संसर्ग से ठण्डी बहती हैं, मेघों के समूहों से रहित दिशाएं मनोहर हैं, जल निर्मल हो जाता है; पृथ्वी कीचड़ से रहित हो जाती है और आकाश निर्मल कान्ति लिये चन्द्र से युक्त और तारों से विचित्र (विविधरूप वाला) हो उठता है।

———

रक्तमुख वानरकथा

(लाल मुंह वाले बन्दर की कथा)

शब्दार्थ—समुद्रोपकण्ठे=समुद्र के नजदीक तट पर । जम्बू=जामन । पादपः=वृक्ष । तत्रच=और वहां । तरोरधः=वृक्ष के नीचे । मकरः=मगरमच्छ । सलिलात्=जलसे । निष्क्रम्य=निकलकर । तीरोपान्ते=तटके पास । न्यविशत्=बैठ गया । प्रोक्तः=कहा । ददौ = देता था । तानि=उनको । गोष्ठीसुखं=सहवास सुखको । अनुभूय=अनुभवकरके । भूयोऽपि=फिरभी । सुभाषित=सूक्ति । नयन्तौ=दोनों व्यतीत करते हुए । तिष्ठतः= दो ठहरते हैं । भक्षित शेषाणि=खाने से बचे हुओं को । प्रयच्छति=देताहै । पत्न्यैः=पत्नी के लिए । अन्यतमें=एकमें । पृष्टः=पूछा । क्व=कहाँ । प्राप्नोषि=प्राप्त करते हो । प्राह=बोला । इमानि=इनको । अभिहितम्=कहा । अमृतप्रायाणि=जो प्रायः अमृत जैसे हैं । ईदृशानि=ऐसे । मह्यम्=मेरे लिए । प्रयच्छ=दे । मैवं=मा एवं, मत ऐसे । वद=कह । प्रतिपन्नः=बुद्धिमान् । अपरम्=दूसरे को । व्यापादयितुं=मारनेके लिए । तत्त्यज=इसलिएछोड़ दे । मकर्याह = मकरी(मगरमच्छी) बोली । किन्न=क्यों नहीं । बहुना=बहुतबातसे । प्रायोपवेशनं=अनशन से बैठना। विद्धि=जानले । ज्ञात्वा=जानकर । चिरायान्वं=देर से आते हुए को । सोद्वेगं=उद्वेग (बेचैनी) से । नालपसि=बात नहीं करता । पठसि=पढ़ता है । भ्रातृ जायया=भाभी ने । गृहीत्वा=पकड़कर । आनय=ला । नोचेत्=नहीं तो । सकासं=पास । त्वदर्थे=तेरे लिये । कलहायमानस्य=कलह करते हुए के । इयती=इतनी । विलग्ना=लगगई । आगच्छ=आ ।

मर्कटः=बन्दर । शक्यते=समर्थ हुआजासकताहै । तस्मात्=इसलिये तामपि=उसको भी । येन=जिससे। प्रणम्य=नमस्कार करके । गृह्णामि =ग्रहण करता हूँ या करूं। पुलिन=रेतीलास्थान । अकृतभयः=बिना डरे।

गच्छ=चल। तत्श्रुत्वा=वह सुनकर। भद्र=भला लोग। विलम्ब्यते=विलम्ब किया जाता है, त्वर्यताम्=जल्दी की जाय। जलधौ=समुद्र में। प्लाव्यते=डुबाया जाता है। तदाकर्ण्य=वह सुनकर। चिन्तयामास=सोचनेलगा। असौ=यह। करोतु=करे। विश्वास्य=विश्वासदिला कर। स्मर्यताम्=स्मरण करो! अपकृतम्=अपकार किया। मृष्टस्य=शुद्ध बने हुये के। दोहदः=प्रबल अभिलाषा। प्रत्युत्पन्नमति=चतुर बुद्धि वाला। व्याहृतम्=कहा। अर्पयामि=देता हूँ। अर्पय=दे। प्रापयामि=पहुँचाता हूँ। निवर्त्य=लौटकर। जल्पित विविधदेवतोप चार पूजः=जिसने अनेक देवताओं की पूजा सेवाअर्चना आदि बोली थीं, मन्नतें मनाई थीं, ऐसा। आसादितवान्=प्राप्तकरता था। चङ्क्रमणेन=चक्कर काटना या कुदाड़ी मारना। तद् हृदयं=वह हृदय। विहस्य=हंसकर। निर्भर्त्सयन्=तिरस्कार करता हुआ। धिक् मूर्ख=मूर्ख! धिक्कार है। आशु=शीघ्र।

समुत्पन्ने षु=उपस्थित होने पर,काम पड़ने पर। न हीयते=कम या नष्ट नही होती। दुर्गं=दुर्गम पथ को,विपत्ति या दुःख को। तरति=तैर जाताहै। जलस्थ=जल में स्थित।

अर्थ—किसी समुद्रतट पर एक बड़ा भारी जामन का वृक्ष है। और वहाँ रक्तमुख नाम का वानर रहता था। वहाँ; उस वृक्ष के नीचे किसी समय (कभी) कराल मुख नाम का मगरमच्छ, समुद्र जलसे निकल कर तटके पास के स्थान में प्रविष्ट हो गया। तब रक्तमुख ने उस से कहा, "भो! (ऐ!) आप अतिथि रूप से आये हैं। सो, खाइये मेरे द्वारा दिये (इन) अमृत तुल्य जामन के फलों को।"

ऐसा कहकर उसे उसने जामन के फल दिये (देता था)। वह भी उनको खाकर, उसके साथ, देर तक, (मित्रों की बैठक) मिलाप-सुख का अनुभव करके फिर अपने घर को आया करता था। इस प्रकार, प्रतिदिन ही, वे वानर और मगर दोनों जामन की छाया में बैठे हुए सुन्दर वार्तालाप आदि द्वारा समय व्यतीत करते हुए, आनन्द से रहते हैं। वह मगर भी, खाने से बचे हुए, जामन के फलों को घर जाकर, अपनी पत्नी को दे देता था। फिर एक दिन उसने (पत्नी ने) वह पूछा (उससे पूछा) "स्वामी! कहाँ तुम ऐसे अमृत

जैसे फल पाते हो ?" वह बोला, "भद्रे ! (भली नारी) मेरा रक्तमुख नाम का वानर परम मित्र है । वह प्रेम पूर्वक ये फल देता है" । फिर उसने (पत्नी ने) कहा , "जो सदा ही ऐसे अमृत रूप फल खाता है, उसका हृदय (भी) अमृतमय ही होगा । सो, यदि, तेरा मुझ भार्या से कुछ भी प्रयोजन (मतलब) है, तो उसका हृदय मुझे दे, जिससे उसे खाकर मैं बुढ़ापे और मृत्यु से रहित (मुक्त) हो जाऊँ।" वह बोला, "भद्रे ! ना ऐसा न कह, वह हमारा भाई बन गया है । दूसरे फल देने वाला है, इसलिये मारा नहीं जा सकता, सो तू (अपने) इस दुराग्रह को छोड़ दे ।"

फिर, मकरी बोली, "तूने कभी भी मेरे वचन को नहीं टाला, सो अब क्यों नहीं (मेरा कहा) करते ? सो, बहुत (कहने) से क्या ? यदि उसका हृदय नहीं खाती हूँ, तो मैंने भूखे बैठने की ठानली है, जानले ।" इस प्रकार, उसके उस निश्चय को जानकर, चिन्ता से व्याकुल-हृदय बना "क्या करूं ? कैसे वह मेरे लिये वध्य हो सकता है(कैसे मैं उसे पा सकूँ) ?" आदि सोचकर वह वानर के पास आया । वानर भी देर से आते हुए को उसको, व्याकुलता से देख कर, बोला, "हे मित्र ! आज देर से कैसे आया है ? प्रसन्नता से बातचीत क्यों नहीं करता ? न सूक्तियाँ ही पढ़ता है ?" वह बोला, "मुझे तुम्हारी भाभी ने बड़े कठोर शब्दों में कहा है, 'अरे कृतघ्न ! मुझे तू अपना मुख न दिखा, क्योंकि तू प्रतिदिन अपने मित्र के आधार से जीता है, और फिर कभी (अपना) घर दिखलाने मात्र से भी उसका बदला नहीं चुकाता है (कभी कृतज्ञता स्वरूप उसे घर नहीं लाता) । सो, तू आज मेरे देवर को पकड़ कर प्रत्युपकार (करने) के लिए घर ला । नहीं तो तेरे साथ मेरा परलोक में साक्षात्कार होगा (मरजाऊँगी) ।" सो, उसके द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैं तुम्हारे पास आया हूँ । सो, आज उसके साथ, तेरे लिए, कलह करते हुए मुझे इतना समय लग गया । सो, आ मेरे घर को, तेरी भाभी बड़ी उत्कण्ठा के साथ (वहाँ) स्थित है ।"

बन्दर बोला, "हे मित्र ! हम तो जंगल के जीव हैं, और तुम्हारा घर जल में है, सो कैसे वहाँ जाया जा सकता है ? इसलिए मेरी उस भाभी को ही यहाँ ले आ, जिससे प्रणाम करके उसका आशीर्वाद प्राप्त करूँ ।"

वह बोला, "हे मित्र! समुद्र के मध्य में, रमणीय वालुकामय प्रदेश में हमारा घर है, सो मेरी पीठ पर सुख से बैठा निर्भय चल।" वह भी यह सुन कर आनन्द से बोला "भले लोग! यदि ऐसा है, तो क्यों देर लगाई है? जल्दी करो! यह ले मैं तेरी पीठ पर चढ़गया हूँ।" ऐसा किया जाने पर, मगर को असीम (अथाह) समुद्र में जाते हुए देख कर, भय से मन में घबड़ाया हुआ वानर बोला, "भाई! मन्द मन्द चलो, पानी की लहरों में मेरा शरीर डूब रहा है।" वह सुनकर, मगर सोचने लगा, "यह अथाह जल में पहुंचा हुआ मेरे वश में हो गया है। मेरी पीठ से तिल- मात्र भी नहीं चल (हिल) सकता, इसलिये कहे देता हूँ इसे अपना अभिप्राय (उद्देश्य, जिससे (अपने) इष्ट देवता का स्मरण करे।" और बोला, "मित्र! तू मेरे द्वारा, पत्नी के कथनानुसार विश्वास दिलाकर, वध (हत्या) के लिए लाया गया है, सो (अपने) इष्ट देव का स्मरण करो!" वह बोला, "भाई! मैंने तेरा या उसका क्या अपराध किया है, जिसके कारण मेरी हत्या का उपाय सोचा?" मगर बोला, "ऐ! उसकी अमृतमय फलखाने से शुद्ध बने तुम्हारे हृदय को खाने की इच्छा हो आई। इस कारण से ऐसा किया।" उपस्थित (हाजर) बुद्धिवाला वानर बोला, "यदि ऐसा है तो तूने मुझे वहीं क्यों नहीं बताया (कहा), जिससे, सदा से, जामन के खोखल में, मेरे द्वारा छिपाये हुए अपने हृदय को मैं भाभी के लिए दे देता? तू मुझे हृदय से शून्य को किस लिए यहाँ ले आया?" यह सुनकर मगर आनन्द के साथ बोला, "भले-मानस! यदि ऐसा है तो दे मुझे हृदय, जिससे वह कुपत्नी उसको खाकर अनशन से उठ खड़े! तुझे मैं उसी जामन के वृक्ष के पास पहुँचा देता हूँ।" ऐसा कह कर, लौटकर, उसी जामन के नीचे आगया। जिसने विविध (अनेक) प्रकार के देवताओं की भेंट पूजाएं बोलरखी थीं (मन्नतें मान रखी थीं) ऐसा वह वानर किसी प्रकार तीर पर पहुँचा। और फिर, लम्बी कुदाड़ी (उछाल) लगाकर उसी जामन के वृक्ष पर चढ़ा सोचने लगा, "अहो! जीवन प्राप्त हुआ (जान बची), मेरा तो जैसे आज पुनर्जन्म दिन हुआ है।" यह सोचते हुए को मगर बोला—

"हे मित्र ! दे वह हृदय, जिससे तेरी भाभी खाकर अनशन से उठ खड़ी हो।" तब, हँसकर, तिरस्कार करता हुआ वानर उसको बोला, "धिक्कार है मूर्ख ! विश्वास-घातक ! क्या किसी के दो हृदय होते हैं ? सो, तत्काल, (इस) जामन के वृक्ष के नीचे से चले जाओ, फिर कभी भी यहाँ नहीं आना।"

काम के आ पड़ने पर जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती (उपस्थित रहती है) वही दुर्ग (विपत्ति) को पार कर सकता है, जैसे कि जल में स्थित वानर ने किया।

विपत्ति में जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है, वही उसके पार जा सकता है।

बक-कर्कट-कथा

(बगले और केंकड़े की कथा)

शब्दार्थ—दर्शयित्वा = दिखाकर। कुलीरेण = केंकड़े ने। दृष्टः पृष्टश्च = देखा और पूछा। कैवर्तैः = मछुओं के द्वारा। वार्ता = बात। नगरोपान्ते = नगर के निकट। व्यापादयितव्याः = मारे जाने चाहियें। अस्मन्मरण = हमारा मरण। ज्ञात्वा = जानकर। आलोचितम् = विचार किया, भला बुरा सोचा। लक्ष्यते = दिखाई देता है। पृच्छ्यताम् = पूछा जाय। ऊचुः = बोले। ब्रूते = कहता है। जलाशयान्तराश्रयणम् = अन्य सरोवर का आश्रय लेना। एकैकशः = एक एक कर के। युष्मान्नयामि = तुम्हें ले जाता हूँ। नीत्वा = लेजाकर। स्थले = शुष्क भूमिमें। धृतवान् = रख देता था। कण्टकाकीर्ण = काँटों से व्याप्त। भवतु = अस्तु। व्यवहरिष्यामि = व्यवहार करूँगा। तावत् = तब तक। भेतव्यम् डरना चाहिये। यावत् = जब तक। अनागतम् = न आया हो। अभीतवत् = निर्भय के समान। प्रहर्तव्यम् = प्रहार करना चाहिये। आलोच्य = आलोचना करके। चिच्छेद = काटता था। पञ्चत्वम् = मृत्यु को।

अर्थ—मालव देश में पद्मगर्भ नाम का सरोवर है। वहाँ एक वृद्ध निर्बल बगला अपने आप को परेशान-सा दिखा कर स्थित था। वह किसी कुलीर (केंकड़े) ने देखा और पूछा, "आप यहाँ भोजन त्यागे हुए क्यों ठहरे हो?" बगले ने कहा, "मछलियाँ मच्छ मेरे जीवन का कारण हैं, वे ही मछुओं द्वारा आकर मारे जाने वाले हैं, यह बात मैंने नगर के निकट सुनी है, इसलिये आहार के बिना हमारा मरण उपस्थित है (मृत्यु आ गई है) यह जान कर, भोजन का भी निरादर किया है।" इसके पश्चात् मत्स्यों ने सोच विचार किया, कि इस समय यही उपकारक प्रतीत होता है, इसलिए जैसा करना चाहिये, इसी से पूछा जाय। मत्स्य बोले, "हे बगुले! अब रक्षा का क्या उपाय है?" बगला बोला, "रक्षा का उपाय केवल अन्य सरोवर में आश्रय लेना है। वहाँ मैं तुम्हें एक-एक करके ले जाता हूँ।" मत्स्य बोले, 'ऐसा ही हो।" इसके पश्चात् वह बगला उन मत्स्यों को एक-एक करके लेजाकर शुष्क भूमि पर रख देता रहा। केंकड़ा भी (अपनी बारी में) मत्स्यों के कांटों से अभिव्याप्त उस स्थान को देख कर चिन्ता करने लगा, "हा! मैं बदकिस्मत मारा गया! अस्तु। अब समय (अवसर) के अनुसार काम करूँगा, क्योंकि—

तभी तक भय से डरना चाहिये, जब तक कि वह सामने आया न हो। किन्तु सामने आये हुए भय को देख कर तो निर्भय के समान प्रहार करना चाहिये। (भय की वस्तु से परोक्ष में ही डरना चाहिये, प्रत्यक्ष में तो निर्भयता से उसका मुकाबला करना चाहिये।)

ऐसी आलोचना (विचार विमर्श) करके केंकड़े ने उसकी (बगले की) ग्रीवा (गरदन) काट खाई। वह बगला मृत्यु को प्राप्त हुआ।

कर्णस्यवदान्यता

(कर्ण की दान शीलता)

शब्दार्थ—शक्रः = इन्द्र । निवर्त्य = लौटकर । उपगम्य = समीप जाकर । याचे = मांगता हूँ । दृढंप्रीतोऽस्मि = अत्यन्त प्रसन्न हूँ । कृतार्थगणना = कृत-कृत्यों की गिनती । विप्रेन्द्र = ब्राह्मणों का स्वामी । रजसा = धूलि से । वक्तव्यं = कहना चाहिये । भव = हो । वक्ष्ये = कहूँगा । परिभवति = तिरस्कार करता है । परिहृत्य = छोड़कर । वक्ष्यामि = कहूँगा । साध्यः = सिद्ध करने के योग्य । महत्तरां = बड़ी से बड़ी को । भवते = आपके लिए । प्रदास्ये = दूँगा । श्रियः = लक्ष्मीका । मद्विभवाः = मेरे ऐश्वर्य ।

गुणवद्...गुणवाला । अमृतकल्प = अमृत के समान । क्षीर = दूध । धाराभिवर्षि = धार वर्षाने वाला । रुचितम् = इष्ट है, रुचिकर है । तृप्तवत्सा-नुयात्रम् = पेट भरा बच्छा जिसके पीछे पीछे यात्रा कर रहा है ऐसे को । अर्थि प्रार्थनीयम् = याचकों के मागने के योग्य को । गोसहस्रं = सहस्र गाएं । मुहूर्तकम् = कभी कभी पलभर को ।

तुरग = घोड़ा । काम्बोज = देश विशेषका नाम । अनिल = वायु । जातम् = उत्पन्न हुए को । = सपदि = तुरन्त । वाजिनां = घोड़ों के । आरोहामि = चढ़ता हूँ । सरित = बहते हुए । षट्पदैः = भ्रमरों द्वारा । सेव्यमानं = सेवा किया जाता हुआ । निचय = समूह । घोषम् = शब्द । सित = श्वेत । वारणानां = हाथियों के । रिपुसमरविमर्द = युद्ध में शत्रुओं को मसलने वाला । वृन्द = समूह । गज = हस्ती । अपर्याप्त = असीम, अमान । कनकं = सोने को । जित्वा = जीत कर । मच्छिरः = मेरा शिर । अविघा = पचाओ २ । भेतव्यम् = डरना चाहिये । प्रसीदतु = प्रसन्न हों । जनितं = उत्पन्न

किया हुआ। भेद्य =भेदन करने के योग्य। देयं=देने योग्य। स्यात्=हो। भगवते=आपके लिए। ददातु=दें। कामः=कामना। अनेक कपटबुद्धेः=अनेक कपट बुद्धि वाले का। अनुशोचितुम्=पश्चात्ताप करने के लिए। अयुक्तम्=अनुचित। गृह्यतां=ग्रहण करिये। दातव्यम्=देना चाहिये। पश्य=देख। अलम् अलम् निवारयितुं=मना करने से बन्द हो जाओ। कालपर्ययात्=समय बदलने से। शुष्यति=सूख जाता है। हुतं=हवन किया हुआ। निकृत्य=काटकर पृथक् करके। निष्क्रान्तः=निकल गया। किरीटमान्=मुकुटधारी। सुरद्विप=ऐरावत हाथी। आस्फालन=थपकी देना। कर्कशांगुलिः=कठोर उँगलियों वाला। कृतार्थ=कृतकृत्य, सफलमनोरथ। पाकशासन=इन्द्र।

अर्थ=(तब ब्राह्मण रूप से इन्द्र प्रवेश करता है)

शक्र=हे मेघो! सूर्य के साथ ही लौटकर आप जायँ। (कर्ण के पास जाकर) हे कर्ण! बड़ी से बड़ी भिक्षा मांगता हूँ।

कर्ण—अत्यन्त प्रसन्न हूँ भगवन्!

अन्वय—अद्य अहं लोके कृतार्थ गणनांयातः, राजेन्द्र मौलि मणिरंजित पाद पीठः, तु द्विजपद्रजसापवित्रमौलिः, एष अहं कर्णः भवन्तं नमस्करोमि।

आज मैं (कर्ण) संसार में कृत-कृत्य व्यक्तियों की गिनती में आगया। राजा महाराजाओं के सिर की मणियों से रंगे हुए चरण कमल वाला (अर्थात् जिसके पावों में राजागण सिर झुकाते हैं), किन्तु ब्राह्मणराजों की चरण धूलि से पवित्र सिरवाला, यह मैं कर्ण आपको नमस्कार करता हूँ। (ब्राह्मणरूप इन्द्र को कर्ण नमस्कार करता है।)

शक्र- (स्वगत) मुझे क्या कहना चाहिये? यदि "दीर्घ आयु हो" यह कहूँगा तो दीर्घ आयु हो जायेगी। यदि नहीं कहूँगा तो यह मूर्ख कह कर मेरा तिरस्कार करेगा। इसलिए (इन) दोनों बातों को छोड़कर (और) क्या कहूँगा? अस्तु, जान लिया (देखलिया)। (प्रकट) हे कर्ण! सूर्य के समान, चन्द्र के समान, हिमालय के समान, समुद्र के समान, तेरा यश (संसार में) स्थिर हो।

कर्ण—क्या ऐसा कहना नहीं योग्य है कि दीर्घ आयुवाला हो? अथवा, यही अच्छा है। क्योंकि पुरुष को यत्नों द्वारा धर्म की सिद्धि करनी चाहिये। राज लक्ष्मियां सर्प की जिव्हाओं के समान चंचल होती हैं। इसलिए केवल प्राजपालन की बुद्धि से शरीरों के नष्ट हो जाने पर, गुणधारण करते हैं (प्रजापालन में शरीर का नाश हो जानेपर गुण या यश रूपी शरीर ही अवशिष्ट रहता हैं)।

भगवन्! क्या चाहते हो, मैं क्या दूँ?

शक्र=बड़ी से बड़ी भिक्षा चाहता हूँ।

कर्ण—बड़ी से बड़ी भिक्षा आप को दूँगा। सुनिये मेरे ऐश्वर्यों को—

(अन्वय) द्विजवर! ते रुचितं (चेत्) गुणवद् मृतकल्प क्षीरधाराभि-वर्षि, तृप्तवत्सानुयात्रम्, तरुणं, अधिकमर्थि प्रार्थनीयं, पवित्रं, विहितकनक-शृंगं गोसहस्रं ददामि?

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! (यदि) तुम्हें रुचिकर हो, तो गुणयुक्त अमृत सदृश दूध की धारा वर्षाने वाली, (दूध पी कर) तृप्त बच्छे जिनके पीछे पीछे यात्रा कर रहे हैं, जिनके लिये याचक लोग अधिक प्रार्थना करते हैं, जो युवा-वस्था में हैं, पवित्र हैं और जिनके सींग स्वर्ण के बनाये गये हैं, ऐसी हजारों गाय दे दूँ? (विशेष्य "गो सहस्रम्" हैं, जो नपुंसक लिंग में है। ऊपर के सब इसी के विशेषण हैं, अतः नपुंसक लिंग में हैं। अर्थ समझने में ध्यान रखना चाहिये।)

शक्र—गायों का सहस्र (हजार गायें)? मुहूर्त को ही (कभी कभी ही) दूध पीता हूँ। नहीं चाहता कर्ण! नहीं चाहता।

कर्ण—क्या, नहीं चाहते आप? यहभी सुनिये—

अन्वय—रवि तुरगसमानं, राजलक्ष्म्याः साधनं, सकलनृपतिमान्यं, मान्य काम्बोजजातम्, सुगुणम्, अनिल वेगं, युद्धदृष्टापदानां, वाजिनां बहुसहस्रं, सपदि ते ददामि? (विशेष्य नपुंसक लिंग "वाजिनां सहस्र" है, इस लिए ऊपर के विशेषण भी उसी लिंग में हैं।)

सूर्य के घोड़ों के समान (तेजस्वी और बलवान्), राजलक्ष्मी (राज शोभा) के (प्रधान) साधनरूप (राजाओं का घोड़ों के बिना काम नहीं चलता), समस्त राज-गणों के द्वारा आदरणीय, माननीय काम्बोजदेश में उत्पन्न हुए,

सुगुणयुक्त, वायुकी-सी गति वाले, युद्ध में शत्रु के लिये आपदा रूप दिखाई देने वाले अनेक सहस्त्र अश्व तुरन्त तुम्हें दे दूँ ? (ब्राह्मण गऊ पसन्द करते हैं। उसमें अरुचि देख कर राजसी ठाठ की वस्तु घोड़ों के विषय में पूछा गया है।)

शक्र—अश्व ? मुहूर्तमात्र को कभी चढ़ता हूँ। नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता।

कर्ण—क्या, नहीं चाहते भगवान् ? और भी सुनिये—

अन्वय—मदसरित कपोलं षट्पदैः सेव्यमानं, गिरिवरनिचयाभं, मेघगम्भीरघोषं, रिपुसमरविमर्दं, सितनखदशनानां वारणानां एतत् अनेक वृन्दं ददामि ? (यहाँ भी विशेष्य "वृन्दं" नपुंसक लिङ्ग में होने से ऊपर के सब विशेषण उसी लिङ्ग में आये हैं।)

गण्डस्थल से मद बहाने वाला, भ्रमरों द्वारा सेव्यमान (भ्रमर जिसके चारों ओर घूम रहे हैं), पर्वतों के समूह की शोभा वाला, मेघ के समान गंभीर शब्द वाला, शत्रुओं को युद्ध में मसलने वाला, श्वेत नख और दाँतों वाले हाथियों का यह (उपस्थित) समूह दे दूँ ?

शक्र—हाथी ? मुहूर्त को (कभी) चढ़ता हूँ। नही चाहता कर्ण ! नहीं चाहता।

कर्ण—क्या नहीं चाहते आप ? और भी सुनिये। अपरिमाण (असीम) स्वर्ण दे दूँ ?

शक्र—कुछ दूर जाकर, अकड़ कर) जाता हूँ, नहीं चाहता कर्ण ! नहीं चाहता।

कर्ण—उससे (स्वर्ण से) जीत कर पृथ्वी दे दूँ ?

शक्र—पृथिवी का क्या करूंगा ?

कर्ण—उसके द्वारा अग्निष्टोम (यज्ञविशेष जो दिग्विजय करके राजा लोग करते हैं) का फल दे दूँ ?

शक्र—अग्निष्टोम फल से क्या काम ?

कर्ण—तो फिर अपना सिर दे दूँ ?

शक्र—त्राहिमां ! त्राहिमां ! राम, राम !

कर्ण—भय नहीं करना चाहिये। प्रसन्न होइये आप। और भी सुनिये—

अन्वय—देवासुरैरपि अस्त्रैः सह नभेद्यम् इदं मम देह-रक्षं, अंगैः सहैव जनितम्, तथापि, यदि भगवते रुचितं स्यात्, मया प्रीत्या, कुण्डलाभ्यां सह देयम्।

देवताओं के द्वारा भी (अपने) अस्त्रों से अभेद्य (जिसका देवता भी शस्त्रों से भेदन नहीं कर सकते), मेरा यह शरीर त्राण (कवच) मेरे अंगों के साथ ही उत्पन्न किया गया है (शरीर से पृथक् नहीं है, उसका अवयव बना हुआ है, तो भी, यदि भगवान् (श्रीमान्) के लिए रुचिकर हो तो, मेरे द्वारा प्रीति पूर्वक, कुण्डलों के साथ (यह) कवच भी देने योग्य है (यह कवच भी मैं प्रसन्नता से दे सकता हूँ)।

शक्र—(हर्ष से) देदो, देदो।

कर्ण—(स्वगत) यही हमको कामना है। क्या यह अनेक कपटी विचारों वाले (कपट बुद्धि वाले) कृष्ण का (कोई) उपाय (षड्यन्त्र) है? वह भी धिक्कार है, पश्चाताप करना अनुचित है। सन्देह नहीं हो (प्रकट) ग्रहण कीजिये।

शल्य—अंगराज! (कर्ण अंगदेश का राजा कहलाता था) नहीं देना चाहिये, नहीं देना चाहिये।

कर्ण—शल्यराज! मत मना करिये। देख—

अन्वय—कालपर्ययात् शिक्षा क्षयं याति, सुबद्धमूला पादपा निपतन्ति, च जलस्थानगतं जलं शुष्यति, (किन्तु) हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति।

समय व्यतीत होने पर शिक्षा कम (नष्ट) हो जाती है, अच्छी मजबूत जड़ों वाले वृक्ष भी गिर पड़ते हैं और जलस्थान (सरोवर) में विद्यमान जल भी सूख जाता है, (किन्तु) दिया हुआ और हवन किया हुआ (यज्ञ में डाला हुआ) वैसा ही ठहरा रहता है। इसलिए ग्रहण करिये। (पृथक् (काट) करके देता है)

शक्र—(ग्रहण करके, स्वगत) अहा! पालिये ये! (निकल गया)

शल्य—हे अंगराज! आप ठगे गये।

कर्ण—किसके द्वारा?

शल्य—इन्द्र के द्वारा।

कर्ण—नहीं, नहीं! इन्द्र को बल्कि मैंने ठगलिया!

अन्वय—द्विजैः अनेक यज्ञाहुतितर्पितः, किरीटमान्, दानव संघमर्दनः, सुरद्विपास्फालन कर्कशांगुलिः, पाकशासनः मया खलु कृतार्थः (कृतः)।

ब्राह्मणों ने अनेक यज्ञों की आहुतियों से सन्तुष्ट किया हुआ, मुकुटधारी, दैत्यों के समूह को मसलने वाला, ऐरावत को थपथपाने से कठोर उंगलियों वाला, इन्द्र मैंने कृतकृत्य (सफल मनोरथ, आभारी) कर दिया।

समस्या-पूर्ति

(कविता के एक अंश को कविता में बाँध कर पूरा करना। अथवा, मिसरे पर मिसरा जोड़ना)

शब्दार्थ—एकदा = एक समय। मृगया = शिकार। आर्तः = पीड़ित दुःखित। निबिडच्छायस्य = घन छाया वाले के। मूलमुपाविशत् = जड़ में बैठा था। शयाने राज्ञि = राजा के सो जाने पर। कपिभिः = बन्दरों ने। सर्वाण्यपि = सभी। चालितानि = हिलादिये। सशब्दं = शब्द के साथ। पश्यन् = देखता हुआ। घटिका मात्रं = घड़ी भर। स्थित्वा = ठहर कर। परिहृत्य = दूर करके। उत्थाय = उठ कर। आरुह्य = चढ़ कर। रवं = शब्द को। अनुकुर्वन् = अनुकरण करता हुआ। समस्या = कविता का एक अंश। गुलुगुग्गुल = जामनों के गिरने के जैसा शब्द। पक्वानि = पके हुए। कपि कम्पित शाखातः = बन्दरों द्वारा हिलाई शाखा से। तुष्ट = प्रसन्न। अदृष्ट मपि = न देखा हुआ भी। शारदा असि = सरस्वती हो। पादयोः = चरणों में। मुहुर्मुहुः = बारबार।

अर्थ—एक समय, शिकार में आकृष्ट राजा अत्यन्त व्यथित हुआ, किसी सरोवर के तट पर, सघन छाया वाले जामन के वृक्ष के मूल में बैठगया।

वहां, राजा के सो जाने पर, जामन के ऊपर, बहुत से वानरों ने सभी जामन के फलों को हिला दिया। उनको आवाज के साथ गिरते हुए देखता हुआ, राजा घड़ी भर ठहर कर, थकावट दूर करके, उठकर, घोड़े पर चढ़कर, चला गया। इसके पश्चात्, राजा पहिले अनुभव में आये बन्दरों द्वारा हिलाये (जामन के) फलों के पतन के शब्द का अनुकरण करता हुआ समस्या बोला, "गुलुगुग्गुलु गुलुगुग्गुलु।" तब कालिदास बोला—

पके हुए जामन फल, वानरों द्वारा हिलाई शाखा से, स्वच्छ जल में, गुलुगुग्गुलु............शब्द करते हुए गिरते हैं।

राजा सन्तुष्ट हुआ बोला, "हे सुकवि! नहीं देखे हुए भी दूसरे के हृदय को कैसे जान लेते हो? (जानलेता है तू?) साक्षात् सरस्वती हो।" इस प्रकार (कहता हुआ) बार बार (कालिदास के) चरणों में गिरता था!

योगस्य चमत्कारः

(योग का चमत्कार)

शब्दार्थ—वेताल: = वृहत्कथा का एक पात्र, भूत-रूप में। अपरां = दूसरी को। अकथयत् = कहता था। कलिंग विषये = कलिंग देशान्तर्गत। आसीत् = था। तयोः = उनके। शास्त्रज्ञ = शास्त्रों का ज्ञाता। भूत्वा = होकर। अगात् = प्राप्त हो गया। पितरौ = माता पिता। आदाय = लेकर। आजग्मतुः = दोनों आये। वेत्तारं = ज्ञाता को। कलेवर = शरीर। क्रन्दितवान् = क्रन्दन करने लगा। नर्तितवांश्च = और नाचने लगा। प्रविवेश = प्रविष्ट हो गया। सुप्तोत्थिते = सोये हुए के उठने पर। परां = अत्यन्त। आसादितवन्तौ = दोनों प्राप्त करते थे। अभूवुः = हुए। प्राप्त जीवन: = जिसको जीवन मिलगया है। ध्यायन् = ध्यान करता हुआ। तस्थौ = स्थित रहा। अक्रन्द् = रोया-क्रन्दन किया। ननर्त = नाचा। वदतु = कहे। द्वेषः = पाप। शृणु = सुन। उपार्जित = कमाया हुआ, प्राप्त किया हुआ। त्यक्त-

व्यम् = छोड़ना है, छोड़ना चाहिये। विहाय = छोड़ कर। प्राप्तव्यं = प्राप्त करना है, प्राप्त करना चाहिये।

अर्थ—इसके पश्चात्, वेताल फिर दूसरी कथा कहने लगा "कलिंग देश में यज्ञ स्थल नामक एक नगर था वहाँ यज्ञसोम नाम का एक ब्राह्मण स्थित है, उसकी ब्राह्मणी सोमदत्ता नाम की है। उन (दोनों) के ब्रह्मस्वामी नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। और, वह सब शास्त्रों का ज्ञाता हो कर भाग्यवश मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब, उसके माता पिता बहुत विधि से विलाप करते हुए, बन्धु जनों के साथ, (अन्तिम) संस्कार के लिए, उसे लेकर श्मशान भूमि में आये। इतने ही काल में, श्मशान में रहने वाला योगी उस ब्राह्मण-कुमार को सब शास्त्रों का ज्ञाता और मनोहर शरीर वाला देख कर करुण स्वर में ऊँचे ऊँचे रोने लगा और बड़े कौतुक (तमाशे) के साथ नाचने लगा। (फिर) अचानक उठ कर, योग के द्वारा (अपने) जीर्ण शीर्ण (वृद्ध) शरीर को छोड़ कर, मरे हुए ब्राह्मण कुमार के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कुमार के निद्रा से उठने पर उसके माता पिता परम आनन्द को प्राप्त करते थे और सब बन्धुजन प्रसन्न हुए। ब्रह्मस्वामी, जिसको जीवन प्राप्त हुआ था, सब भोगों (सुखानुभवों) को छोड कर, योग का ध्यान (चिन्तन) करता हुआ ठहरा (स्थित हुआ)। श्मशान-वासी योगी कैसे रोया अथवा कैसे नाचा, इसका कारण आप (देव) बतायें।" राजा कहता है, वेताल! देरसे कमाये हुए (प्राप्त किये हुए, पुराने) जीर्ण शीर्ण तनु को छोड़ना है, इससे (वह) रोया, जीर्ण शरीर को छोड़ कर, समस्त गुणों का आधारभूत ब्राह्मण शरीर प्राप्त करना है, इससे वह नाचा। —वेताल पचीसी

नीतिरत्न माला

(नीति के वचनों रूपी रत्नों की माला)

शब्दार्थ–पृथिव्यां = पृथ्वी में। त्रीणि = तीन। सुभाषितं = सुन्दर उक्ति विधीयते = की जाती है। अमृतोपमे = अमृत के तुल्य। हिते = हित में नियुंक्ते = लगाती है। अभिरमति = आनन्द क्रीडा करती है। अपनीय = दू करके। लक्ष्मीं = शोभा को। तनोति = तानती है, फैलाती है। वितनोति = विस्तृत करती है। दिक्षु = दिशाओं में।

विद्वत्वं = विद्वत्ता। नृपत्व = राज्य या राजापना। कदाचन = कभी। अज्ञः = मूर्ख। सुखं = सुखपूर्वक। आराध्य = सेवा या आराधना (प्रसन्नता के योग्य। सुखतरं = उससे भी अधिक सुखपूर्वक। आराध्यते = सेवा की जाती है, प्रसन्न किया जाता है। लव = टुकड़ा। दुर्विदग्धं = वृथाभिमानी रञ्जयति = खुश करता है। विषाण = सींग। खादन् = खाता हुआ जीवमानः = जीता हुआ। भागधेयं = भाग्य। प्रीणयेत = प्रसन्न करे। पितरं = पिता को। भर्तुः = पति का कलत्रम् = स्त्री, पत्नी। आपदि = आपत्ति में समक्रियम् = समान व्यवहार वाला। पुण्यकृतः = पुण्य कर्त्ता। लभन्ते = प्राप्त करते हैं। सर्षप = सरसों। पर छिद्राणि = दूसरे के छिद्रों (दोषों) को बिल्वमात्राणि = बिल्व के फल के आकार के। परित्यक्तव्य = दूर हटा देना चाहिये विद्यया = विद्या से। सन् = होता हुआ। वित्तं = धन। श्रुतिमान् = वेद का ज्ञाता। काञ्चनं = सोने को। बहुश्रुताः = जिन्होंने बहुत कुछ सुना है। वयोवृद्ध = आयु में बड़े। द्वारि = द्वारपर। किङ्कराः = नौकर। द्वौ = ये दोनों अम्भसि = जल में। निवेष्टव्यौ = डुबो देने चाहिये। गाढं = कसकर। बद्ध्वा = बांधकर। अप्रदातारं = दान न करने वाले को। अतपस्विनम् = जो तपस्वी

(कष्ट सहने वाला) न हो, उसको। भर = पालन कर। कौन्तेय = कुन्ती पुत्र अर्जुन। प्रयच्छ = दे। व्यधितस्य = व्याधिग्रस्तको। नीरुजस्य = नीरोगी का। वेति = वा इति, अथवा यह। लघुचेतसाम् = छोटे दिल वालों की। ब्रूयात् = बोले, अनृत = झूठ। अप्रिय = जो अच्छा न लगे। सिद्ध्यन्ति = सिद्ध होते हैं। उपैति = प्राप्त होती है। दैवं = भाग्य। कापुरुषाः = कायर लोग। आत्मशक्त्या = अपनी सामर्थ्य से। यत्ने कृते = यत्न करने पर। कः = कौनसा। संहति = समूह। गुणत्वं = रस्सी रूपको। आपन्नैः = प्राप्तहुओं के द्वारा। मत्तदन्तिनः = मदमस्त हाथी। वरम् = अच्छा है। तमः = अन्धकार को। हन्ति = नष्ट करता है। वन्हिना = अग्नि के द्वारा। दह्यमानेन = जलाये जाते हुए ने। दह्यते = जला दिया जाता है। दुष्पुत्रेण = कुपूत द्वारा। कष्ट = कष्ट दायक है। परान्नं = दूसरे का अन्न।

चलं = चञ्चल। याति = जाता है। जातेन = उत्पन्न हुए द्वारा। परिवर्तिनि = बदलते हुए में। मृतः = मरा। जायते = उत्पन्न होता है। दैवहतं = नष्ट भाग्य वाला। विनश्यति = नष्ट हो जाता है। विपिने = वन में। कृतप्रयत्नोऽपि = जिसके लिये प्रयत्न किया गया हो। विनोदेन = मन बहलाव से। धीमतां = बुद्धिमानों का। जीवन्तोऽपि = जीते हुए भी। परिकीर्तिता = वर्णित किये हैं। व्याधितः = बीमारी वाला। प्रवासी = विदेश में रहने वाला। नित्यसेवकः = सदा का नौकर। नर पति = राजा। द्वेष्यतां = शत्रुता को। लोके = संसार में। त्यज्यते = छोड़ दिया जाता है। पार्थिवेन = राजा द्वारा। महति = बड़े में। नृपति जनपदानां = राजा और जनता का या देश का।

पृथिव्यां ....विधीयते।

अर्थ—पृथिवी पर तीन ही रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित (सूक्तियां) मूर्खों द्वारा रत्न संज्ञा (नाम) पत्थर के टुकड़ों में की जाती है।

२. संसार..सुजनैः जनैः॥

अर्थ—संसार रूपी कड़ुए वृक्ष के अमृततुल्य दो ही फल हैं—सूक्तियों के रस (आनन्द) का आस्वाद लेना और सज्जन जनों के साथ संगति।

३. मातेव रक्षति .... विद्या ॥

अर्थ—माता के समान रक्षा करती है, कान्ता (प्रिया) के समान खेद दूर करके आनन्दक्रीडा करती है। शोभा बढ़ाती है और दिशाओं में (चारों ओर) यशका विस्तार करती है। विद्या कल्पवृक्ष की बेल के समान क्या क्या कार्य) सिद्ध नहीं करती ? (सभी करती है)

४. विद्वत्वं .... पूज्यते ॥

अर्थ—विद्वत्ता और राज्य (राजा का पद) कभी भी बराबर नहीं है। राज्य अपने देश में ही पूजा जाता है, (किन्तु) विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

५. अज्ञः सुख .... रञ्जयति ॥

अन्वय—अज्ञः सुखमाराध्यः, विशेषज्ञः सुखतरम् आराध्यते, (किन्तु) ज्ञानलवदुर्विदग्धं तं नरं ब्रह्मापि न रञ्जयति।

अर्थ—मूर्ख सुख से आराधना (सेवा) करने के योग्य होता है और विशेषज्ञ (शिक्षित) की उससे भी अधिक सुख से आराधना की जाती है, किन्तु ज्ञान के थोड़े से अंश का वृथा अभिमान करने वाले (उस) मनुष्य को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

६. साहित्य संगीत .... पशूनाम् ॥

अन्वय—साहित्यसंगीतकला विहीनः (नरः) पशूनां परमं भागधेयं तृणं न खादन्नपि जीवमानः पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः भवति)।

अर्थ—साहित्य, संगीत और कलाओं से रहित (मनुष्य) पशुओं के भाग्य की वस्तु (जो कि उनके भाग्य में लिखी है) तृणों (घास) को न खाते हुए भी जीता पूंछ और सींगोंसे रहित साक्षात् पशुरूप है। (जो व्यक्ति साहित्य संगीत आदि से शून्य जीवन बिताता है, वह पशु है, यद्यपि वह घास नहीं खाता और नाहीं उसके सींग और पूंछ ही हैं।)

७. यः प्रीणयेत् .... लभन्ते ॥

अन्वय—यः सुचरितैः पितरं प्रीणयेत् स पुत्रः, यद् भर्तुरेव हित-

मिच्छति तत् कलत्रम्, यत् सुखे आपदि चसमक्रियं तत् मित्रम्, जगति एतत्त्रयं पुण्यकृतो लभन्ते ।

अर्थ—जो (अपने) अच्छे चरित्रों से पिता को प्रसन्न करता है, वह (वस्तुतः) पुत्र है, जो (सदैव) पति की हितकामना करती है, वह (वस्तुतः) पत्नी है, जो सुख में और आपत्ति में समान व्यवहार वाला है वह (वस्तुतः) मित्र हैं, संसार में इन तीनों को पुण्यवान् लोग ही प्राप्त करते हैं।

८. खलः शर्षप··································पश्यति ।

अर्थ—दुष्ट पुरुष दूसरों के जैसे (छोटे) दोषों को तो देखता है, परन्तु अपने बिल जैसों (बड़े दोषों) को देखता हुआ भी नहीं देखता ।

६. दुर्जनः································भयंकरः ॥

अर्थ—विद्या से सुभूषित होता हुआ भी दुर्जन त्याग के ही योग्य होता है, मणि से सुशोभित भी सर्प क्या भयंकर नहीं होता । ?

यस्यास्ति································माश्रयन्ते ॥

अर्थ—जिसका (के पास) धन है, वह मनुष्य कुलवान् है, वही पण्डित है, वेदों का ज्ञाता है और गुणज्ञ है, वही भाषणकर्ता और वही दर्शन के भी योग्य है, (क्यों कि) सभी गुण सोने (लक्ष्मी) का आश्रय लेतें हैं। (ऐसी बात दुनियांमें होती जरूर है कि धन आनेपर निगु णी भी गुणी कहलाने लगता व्यक्ति, या उसमें कुछ गुण आ भी जाते हैं, परन्तु वस्तुतः गुण के लिए धन होने की कोई शर्त नहीं है । अतः यह एक लोक-व्यवहार के प्रति कटाक्ष ही मानना चाहिए ।)

१२ वयोवृद्धाः ································किंकरः ॥

अर्थ—आयु में बड़े, तप में बड़े, और जो बहुश्रुत (जिन्होंने बहुत कुछ सुन रखा है.) वृद्ध हैं, वे सब धन में बड़े (वृद्ध) लोगों के द्वार पर किंकर (नौकर) के रूप में ठहरते हैं (समस्त वृद्धों से धन-वृद्ध ही बड़े हैं) ।

१२ द्वाविमावम्भसि································चातपस्विनम् ॥

अर्थ—दान न करने वाले धनी को और कष्ट न पाने वाले (परिश्रम से

जो चुराने वाले) गृहस्थी को, इन दोनों को (इनके) गले में कसकर शिला (पत्थर) बाँधकर जल में फेंक देना चाहिये।

१३ दरिद्रान्..किमौषधैः॥

अर्थ—हे कौन्तेय ! (कुन्ती पुत्र) दरिद्रों का पालन कर (उनको दे), धनी को धन न दे। बीमार के लिए औषधि और पथ्य होते हैं। नीरोग को औषधि से क्या (लाभ) ?

१४ अयंनिजः..कुटुम्बकम्॥

अर्थ—यह अपना है अथवा यह पराया है, ऐसी समझ (गिनती) छोटे हृदय वालों को होती है। उदार चरित्र वाले व्यक्तियों का तो पृथ्वीमात्र ही कुटुम्ब होता है (वे संसार को अपना कुटुम्ब समझते हैं)।

१५ सत्यंब्रूयात्..सनातनः॥

अर्थ—सत्य बोले और प्रिय (प्यारा लगने वाला) बोले, अप्रिय (बुरा लगने वाला कठोर) सत्य न बोले और न प्रिय (किन्तु) असत्य बोले, यही सदा का सादा धर्म है।

१६ उद्यमेनहि..मृगाः।

अर्थ—कार्य उद्यम [उद्योग] से सिद्ध होते हैं, न कि मनोरथों (मन की इच्छा मात्र) से। सोते हुए सिंह के मुख में स्वयं (आकर) मृग नहीं घुस जाते (उसे शिकार करना पड़ता है)।

१७ उद्योगिनं..कोऽत्रदोषः॥

अर्थ—उद्योगी (कर्मी) वीर पुरुष को ही लक्ष्मी मिलती है। "भाग्य प्रधान है," यह बात तो कायर लोग कहा करते हैं। (इसलिए) भाग्य को छोड़कर अपनी शक्ति से पुरुषार्थ कर, यत्न करने पर (भी) यदि सिद्ध नहीं होता तो इसमें दोष क्या है ?

१८ अल्पानां..मत्तदन्तिनः॥

अर्थ—छोटी भी वस्तुओं का भी समूह कार्य-सिद्धि करने वाला होता है, घास के बटे हुए रस्सियों से बड़े बड़े मस्त हाथियों को बाँध दिया जाता है।

१६ वरमेको·······························तारागणोऽपिच ॥

अर्थ...गुणी पुत्र एक ही अच्छा है और मूर्ख सौ भी नहीं। चन्द्रमा अकेला ही अंधकार का नाश करता है और तारों का समूह भी नहीं (अन्धकार का नाश कर सकता)।

२० एकेन·······························यथा ॥

अन्वय—वन्हिना दह्यमानेन एकेन शुष्कवृक्षेण सर्वतद्वनं (तथा)दह्यते,यथा (एकेन) दुष्पुत्रेण कुलम् ।

अर्थ—अग्नि द्वारा जलाये जा रहे एक (ही) सूखे वृक्ष से (कारण से) वह सारा ही वन (ऐसे) जला दिया जाता है, जैसे (किसी एक) कुपुत्र के कारण कुल (जल जाता है, नष्ट हो जाता है)।

२१ कष्टं खलु·······························परान्नंच ॥

अर्थ—मूर्खता निश्चय से कष्ट दायक है, और यौवन में दरिद्रता भी अवश्य (खलु शब्द का प्रकरणानुसार निश्चय, संभावना आदि अर्थों में प्रयोग होता है) कष्ट रूप है। (किन्तु) कष्ट से भी अधिक कष्टकर, दूसरे के घर में निवास और दूसरे का अन्न है (परावलंबन या परवशता सबसे बड़ा कष्ट है)।

२२ चलंवित्तं·······························जीवति ॥

अर्थ—धन चंचल (क्षण स्थायी) है, मन चंचल है, जीवन और यौवन (भी) चंचल हैं, (वस्तुतः) यह सब (वस्तुएं) चंचल हैं। जीता केवल वही है जिसका (संसार में) यश है। (यशस्वी जीवन ही वास्तविक जीवन है)।

२३ संजातो·······························वंशःसमुन्नतिम् ॥

अन्वय—येनजातेन वंशः समुन्नतिं याति, सजातः। परिवर्तिनि संसारे को न मृतः, कोवानजायते ।

अर्थ—जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त होता है, वही (वस्तुतः) उत्पन्न हुआ है (उसी का जन्म सफल है)। (नहीं तो) इस बदलने वाले संसार में, कौन मरा नहीं और कौन उत्पन्न नहीं होता है?

२४ अरक्षितं·······························जीवति ॥

अन्वय—दैवरक्षितं (वस्तु) अरक्षितं (अपि) तिष्ठति, दैवहतं सुरक्षितं

(अपि) विनश्यति। अनाथः, अरक्षितः विपिनेऽपि जीवति, कृत-प्रयत्नः गृहे (अपि) न जीवति।

अर्थ—दैव (भाग्य) द्वारा रक्षित (वस्तु) अरक्षित भी ठहरी रहती है, और भाग्य हत (जिसे भाग्य ने मार दिया है) वस्तु सुरक्षित की हुई भी नष्ट हो जाती है। (कभी कभी) अनाथ, अरक्षित जीव जंगल में भी जीवित रहता है, और (कभी कभी) प्रयत्न करने पर घर में भी जीवित नहीं रहता। (भाग्य वाद में पूर्ण आस्था प्रकट की गई है।

२५ काव्यशास्त्र..............................कलहेनच॥

अर्थ—बुद्धिमानों का समय काव्यशास्त्र के मनोविनोद से जाता है, किन्तु मूर्ख लोगों का, व्यसन (ऐब) से, नींद से और झगड़े से (समय जाता है)।

२६ जीवन्तोऽपि..............................नित्यसेवकः॥

अर्थ—व्यास जी ने (इन) पांचों—दरिद्र, बीमार, मूर्ख, विदेश में रहने वाले और सदा के सेवक—को जीवित रहते हुए भी मृतक कहा है।

२७ नरपति..............................कार्यकर्ता॥

अर्थ—हितकारी राजा (भी) संसार में शत्रुता (द्वेष) को प्राप्त हो जाता है, और परोपकारी मनुष्य का राजा त्याग कर देता है। सो इस प्रकार राजा और देश में (जनता में) महान विरोध विद्यमान होने पर कार्य कर्ता व्यक्ति बड़ा दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाला) है (नहीं मिल सकता)।

अनन्तभट्ट कथा

शब्दार्थ—मानभंगः=मानहानि। परकृतः=दूसरे द्वारा किया हुआ। स्वामिनी=स्वामिनियों का। मंगलावहः=मंगलप्रद। चोलेषु=चोल देशों में। अभूत्=था। नगरम्=अच्छा नगर। अनभ्यस्तविद्यः=जिसने विद्या का अभ्यास नहीं किया था। द्विजाः=दोनों। सोदरः=सगेभाई। अर्थात लब्धपदाः=जिन्होंने आश्रय पद लिये थे। आसन्=थे। पुत्रोपेत=और पुत्र

गीर्वाण भाषया = देववाणी (संस्कृत) द्वारा । व्यवहरतिस्म = व्यवहार करते थे । भुञ्जानः = भोजन करता हुआ । आनय = ला । पत्न्यः = पत्नियां । तेषां = उनकी । जहसुः = हँस पड़े । साकूतः = मतलब भरा, व्यंग्य भरा । पत्न्याश्च = और पत्नी का । लज्जावहः = लज्जाजनक । धीमती = बुद्धिमती । पत्युः = पति के । परि भवं = तिरस्कार को । असहमाना = न सहती हुई । प्राह = बोली । तान् = उनको । विहस्यते = हँसा जारहा है । मद् भर्त्रा = मेरे पति ने । पदच्छेद = पदों का अलग अलग करना । तक्रं = लस्सी, छाछ को । अभिधाय = कह कर । पर्यवेषयत् = परोसती थी । अव्युत्पन्नं = आशिक्षित । स्वाज्ञान मूलं = अपना अज्ञान ही जिसका मूल (कारण) है । गर्हयन् = निन्दा करता हुआ । अन्तर्लज्जितः = अन्दर मन में लज्जित हुआ । अभिवीक्षितुम् = सामने देखने के लिए । अपारयन् = समर्थ न होता हुआ । साधु = अच्छा, ठीक । चेदम् = और यह । उच्यते = कहा जाता है । अभिरक्षतु = चारों ओर से रक्षा करे । आचन्द्रतारकम् = तारों और चान्द तक, अर्थात् जब तक चन्द्र और तारे हैं । कमपि = किसीको । उपास्य = उपासना करके, सेवा करके । तत्प्रसादेन = उसकी प्रसन्नता से । काव्य निर्माण धुरीणः = कविता करने में धुरंधर । अजायत = बनगया । विद्वत्प्रियस्य = विद्वान् जिसको प्रिय हैं ऐसे के । मही पतेः = राजा की । निरतिशयं = अति गम्भीर । परिज्ञाय = जान कर । परं संतुष्य = अत्यन्त संतुष्ट होकर । बहुधा = बहुत प्रकार से । सम्मान्य = सम्मान करके । इत्थं = इस प्रकार । भूपालेन = राजा द्वारा । अतिवाह्य = व्यतीत करके । बन्धु दर्शन लालसः = भाइयों को देखने की इच्छा वाला । जिगमिषा = जाने की इच्छा को । न्यवेदयत् = निवेदन किया । राज्ञे = राजा के लिये । अधिरोप्य = चढ़ा कर । विद्वद्विरुदैः = विद्वत्ता की उपाधियों से । प्रेषयामास = भेजदेता था । तुन्दिल = तोंद वाला, फूला हुआ । प्रेत्य = आकर । बहुमतः = बहुत माना हुआ । पत्न्या सह = पत्नी के साथ । अवसत् = रहने लगा ।

अर्थ—दूसरे के द्वारा किया हुआ अपमान स्वाभिमानियों के लिए मंगलप्रद (सिद्ध) होता है । अनन्तभट्ट मान भंग (अपमान) के कारण ही, परम पाण्डित्य को प्राप्त हुआ (परम पण्डित बन गया) ।

चोल देश में अनन्त भट्ट नाम का कोई कवि था। वह बालकपन में विद्या का अच्छी तरह अभ्यास करने वाला नहीं था, अर्थात् उसने बालकपन में विद्या का अभ्यास नहीं किया था, अतएव अशिक्षित था। उसके ही तीन शास्त्र पढ़े लिखे सगे भाई थे। उसके घर में स्त्रियां और पुरुष सदा संस्कृत भाषा के द्वारा व्यवहार करते थे (घरकी भाषा संस्कृत थी)। किसी दिन, भाइयों के साथ (बैठ कर) भोजन करता हुआ अनन्त भट्ट (अपनी) पत्नी को बोला "दधिमानय" (दही ला दधि शब्द नपुंसक लिङ्ग है, अतः द्वितीया के अर्थ में उसका रूप "दधि" होना चाहिये "दधिं" नहीं। इसलिए "दधिमानय" अशुद्ध बोला। उसे 'दधिआनय' बोलना चाहिये था) इस (अशुद्ध) शब्द-प्रयोग को सुनकर उसके भाई और उनकी पत्नियाँ मन्द मन्द हँस पड़े। साभिप्राय (व्यंग्यपूर्ण) यह हास्य उसके और उसकी पत्नी के लिए अत्यन्त लज्जाकर हुआ। किन्तु (अपने) पति के तिरस्कार को न सहती हुई बुद्धिमती उसकी पत्नी उन्हें बोली, "हे! आप लोगों के द्वारा ऐसे क्यों हँसा जा रहा है? (ऐसे क्यों हँसते हो?) मेरे पति ने "दधिमानय" यह कहा है! यहाँ "दधि मा ✕ आनय" यह शब्द भेद है 'दधि = दही को, मा = मत, आनय = ला, ऐसा छेद करने पर प्रयोग शुद्ध हो जाता है। और, दही मत ला यह अभिप्राय है। ऐसा कह कर उसने पति के लिए शुद्ध प्रयोग की। वह भी अपने अज्ञान के कारण हुए (उस) अपमान को न सहता हुआ, तत्क्षण अपने आप की निन्दा करता हुआ, अत्यन्त लज्जित होता हुआ और उनके (भाइयों आदि के) मुख की ओर देखने में असमर्थ होता हुआ, भोजन के अनन्तर ही, विदेश को चल दिया और यह कहता गया—

प्राण का भी परित्याग करके स्वाभिमान की रक्षा करनी चाहिये। (क्योंकि) प्राण नश्वर होता है और स्वाभिमान चन्द्र तारों तक रहता है (स्थायी होता है)।

इसके पश्चात्, वहाँ किसी मन्दिरों में सच्चिदानन्द की उपासना (आराधना) करके, उसकी कृपा से समस्त शास्त्रों का ज्ञाता बना, कविता करने में प्रसिद्ध कवि हो गया। पश्चात् विद्वानों को प्यार करने

वाले किसी राजा की सभा में गया। और उस (राजा) ने, इसके अत्यन्त पाण्डित्य और कवित्व को जान कर, परम सन्तुष्ट होकर, अनेक प्रकार से सम्मान करके, उसे (कविको) अपनी सभा का प्रधान पण्डित बना दिया। इस प्रकार, उस राजा के द्वारा सम्मानित हुआ, वह कुछ काल बिताकर, भाइयों को देखने की इच्छा वाला, अपनी स्वदेश गमन की इच्छा का राजा के पास निवेदन करता था (स्वदेश गमन की इच्छा प्रकट की)। राजाने भी, उसको हाथी पर चढ़ा कर, अनेक विद्वत्ता सूचक उपाधियों से अलंकृत करके, मातृभूमि को भेज दिया और वह (कवि) अत्यन्त आनन्द में फूला हुआ अपने घर आकर बन्धुओं द्वारा सम्मानित हुआ तथा पत्नी के साथ आनन्द से रहने लगा।

पुत्रोपदेशः

(पुत्र को उपदेश)

शब्दार्थ—क्रमेन = क्रमशः। अधीताशेष विद्यम् = पढ़ली हैं सारी विद्याएं जिसने ऐसे को। अनुमोदितम् = अनुमोदन किये हुए को, समर्थन प्राप्त को। अनुगम्य = पीछे आकर। आनेतुं = लाने को। बलाधिकृतं = सेनापति को। आहूय = बुलाकर। अतिप्रशस्ते = प्रशंनीय। अहनि = दिन में। प्राहिणोत् = भेजता था। द्वास्थैः = द्वार पर स्थितों के द्वारा। समावेशितः = प्रवेशित। प्रविश्य = प्रविष्ट होकर। क्षितितलावलंम्बित चूड़ामणिना = पृथ्वी तक लटकती हुई चूड़ामणि वाले से। राजपुत्रानुमतः = राजपुत्र द्वारा अनुमति दिया हुआ। न्यषीदत् = बैठ गया। उपसृत्य = पास जाकर। अब्रवीत् = बोला। समाज्ञापयति = आज्ञा देता है। नः = हमारे। सकला = सारी। सर्वास्वायुधविद्यासु = सबशस्त्र विद्याओं में। विनिर्गमाय = बाहर आने के लिए। अनुमतः = अनुमोदित। उपगृहीतशिक्षं = जिसने सब शिक्षा प्राप्त करली है। अवगत = ज्ञात। कलाप = समूह। पौर्णमासीय = पूर्णमासी का। उद्गतं =

उदितहुएको। जनः=लोग। ब्रजन्तु=जायें। संवत्सरः=वर्ष। अधिवसतः= रहते हुए का। सम्पिण्डितेन=जोड़े हुए से, द्वारा। प्रवर्धसे=बढ़ रहे हो। प्रभृति=लेकर। निर्गत्य=निकल कर। मातृभ्यः=माताओं के लिए। अभिवाद्य=अभिवादन करके। अपगतनियन्त्रणः=जिसके ऊपर से नियन्त्रण हट गया है। अनुभव=अनुभव में ला, आस्वाद ले। सम्मानय=आदर कर। राजलोकं=राजा गण को। पूजय=पूजा कर। द्विजातीन्=ब्राह्मणों को। प्रजाः=प्रजाओं को। परिपालय=पालन कर। आनन्दय=आनन्द दे।

अर्थ—इस प्रकार, क्रमशः, सब विद्याओं को पढ़े हुए, यौवनारूढ़, आकर आचार्यों (गुरुओं) के द्वारा अनुमोदित (अर्थात् गुरुओं द्वारा स्वीकृति दिये जाने पर) चन्द्रापीड को लाने के लिए, राजा तारापीड ने बलाहक नाम के सेनानायक को बुलाकर, बहुत घोड़े और पैदलों के साथ (उसे) मंगलमय दिन में भेज दिया। वह विद्यागृह (शिक्षालय) में पहुँचा हुआ द्वार पर खड़े द्वारपालों द्वारा अन्दर प्रविष्ट कराया गया। प्रवेश करके, (प्रणाम में) भूमितक लटकती हुई चूड़ामणि (शिरोमणि) वाले सिर से नमस्कार करके, राजपुत्र (चन्द्रापीड) द्वारा अनुमति (स्वीकृति) दिया हुआ विनय पूर्वक आसन पर बैठ गया। मुहूर्त भर ठहर कर, विनय दिखाता हुआ, बलाहक चन्द्रापीड के पास सरक कर बोला, "कुमार! महाराज आज्ञा देते (ता) हैं, "हमारे मनोरथपूर्ण हो गये हैं। शास्त्र (तुमने) पढ़लिये हैं। सारी कलाएं सीखली हैं। समस्त शस्त्र विद्याओं में भारी प्रतिष्ठा प्राप्त करली है। सब आचार्यों ने विद्यालय से निकलने (बाहर आने) के लिए अनुमति देदी है। (अब) शिक्षा पाये हुए, समस्त कला समूहों को प्राप्त किये हुए, तुम्हें (तुझे) पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान लोग देखें (पूर्णमासी के चन्द्रमें समस्त कलाएं होती हैं औरचन्द्रापीड ने भी सब कलाएं प्राप्त की थीं)। चिरकाल से दर्शनों के लिए समुत्सुक लोगों के नेत्र सफलता को प्राप्त हों (सफल हों)। यहां विद्यालय में रहते हुए आपको यह दशवां वर्ष है। षष्ठम अनुभूति वर्ष में प्रविष्ट हुए हो। इस प्रकार जोड़ देने पर आप इस १६ वें वर्ष में वर्द्धमान हैं। सो, आज से (विद्यालय से) निकल कर दर्शनों के लिए लालायित समस्त माताओं को दर्शन देकर, गुरुओं को नमस्कार करके, स्वच्छन्द, यथेच्छ, राज्य के सुखों का अनुभव करो (कर)।

राजागणों का सम्मान करो (कर), ब्राह्मणों की पूजा करो (कर), प्रजाओं का पालन करो (कर) और सम्बन्धियों को आनन्दित करो (कर)।—कादम्बरी से।

वनवास-काल

(वनवास के समय--वाल्मीकि रामायण से)

शब्दार्थ—सबालवृद्धाः = बालकवृद्धों केसाथ। अभिदुद्राव = ओर दौड़ी। घर्मार्तः = गर्मी से सताया,प्यासा। संयच्छ = रोकले,कसले। रश्मीन् = रासों को। याहि = चल। द्रक्ष्याम = देखेंगे। दुर्दर्श = कठिनता से दिखाई देनेवाला। नो = हमारा, (हमारे लिए)। वृतः = घिरा हुआ, परिवारित। ब्रुवन् = कहता हुआ। निर्जगाम = निकला। एकचित्तगतं = एक मन से (रामदर्शन की इच्छा से) गये हुए को। पुरम् = नगर को। निपपातैव = गिर पड़ा। कृत्तमूलः = जिसकी जड़ कटी हुई हो। आगारं प्रति = घर के प्रति। बद्धवत्सा = जिसका बच्चा वंधा हो। अभ्यधावत = सामने होकर दौड़ी। तिष्ठ इति = ठहर यह। चक्रोश = चीखा। याहि = चल। राघवः = राम। सुमन्त्रस्य = सुमन्त राम को रथ में बिठा कर छोड़ने गया था, उसके। अन्तरा = बीच में। पुनरायातं = वापिस आये को। नैनं = उसको नहीं, न एनं। दूर मनुव्रजेत् = दूर तक पीछे पीछे जाय। अमात्याः = मन्त्रीगण। ऊचुः = बोले। वचः = वचन। न्यवर्तत = लौट गया। राज्ञः = राजा का। आशुवेगेन = शीघ्र गति वाले से। मानुषम् = मनुष्यों का समूह।

अर्थ—(राम की वन यात्रा के समय,नगर में और राजभवन में उपस्थित करुण दशा का वर्णन है। लोग राम के रथ को नहीं ज़ाने देना चाहते, पीछे पीछे भागते हैं) इसके पश्चात् (राम के रथ में बैठ कर चल देने पर), बालक वृद्धों के साथ, परमदुःखित वह (अयोध्या) नगरी राम की ओर ही भाग चली, जैसे गर्मी से सताया हुआ (प्यासा) पानी की ओर (भागता है)।

(लोग रथवाहक को कहते हैं) घोड़ों की रस्सियों को खींचले, आहिस्ता आहिस्ता चल, (हम) राम का मुख देखेंगे, (क्यों कि यह अब) हमारे लिए दुर्लभ दर्शन वाला हो जायगा।

फिर, राजा, दीन आत्मावाला, दीन (दुःखित) स्त्रीजनों से परिवारित हुआ, "पुत्र को देखूंगा". ऐसा कहता हुआ घर से निकल पड़ा।

किन्तु एक मन से गये हुए नगर को देखकर श्रीमान् राजा दुःख के कारण कटे हुए मूल वाले (छिन्नमूल) वृक्ष के समान (भूमि पर) गिर पड़ा।

राम की माता (राम की ओर) ऐसे दौड़ी, जैसे बच्छे वाली और जिसका बच्छा (अन्दर घर में) बंधा है ऐसी गौ बच्छे के कारण (प्रेम) से घर के प्रति भागती है (भागती हुई)।

"ठहर," राजा चीखा, "चल चल," यह राम बोले (ला) और इस प्रकार, सुमन्त की आत्मा दो चक्रों के बीच में फंस गई (दो विरोधी आज्ञाएं पाकर किंकर्तव्यविमूढ हो रहा। दो विरुद्ध गतियों वाले चक्रों के बीच में पड़ी चीज दण्ड आदि भी टूट जायगी किसी ओर नहीं घूमेगी)।

"जिसे आप वापिस आया चाहते है, उसके पीछे दूर तक न चलिये," (दशरथ की इच्छा थी राम दसपांच दिन वन घूम कर चले आयें। अतः अधिक दूर जाना व्यर्थ था) इस प्रकार मन्त्रीगण महाराज दशरथ को वचन बोले।

राजा का आदमी (सुमन्त), राम की प्रदक्षिणा करके (राम को आने के लिए तैयार न पाकर) लौट गया। किन्तु वह जन-समूह तीव्रगति वाले मन से भी नहीं लौटे (उन्होंने मन से भी अयोध्या वापिस जाने की नहीं सोची थी और साथ लगे थे)।

सोमदत्तोत्पत्ति कथा

(सोम दत्त के जन्म की कहानी)

शब्दार्थ—परस्मिन् = दूसरेमें। अन्ते वासी = शिष्य। देवकीर्ति = दिव्य शोभा वाले को। निर्भर्त्सितमार मूर्ति = काम मूर्ति को भी तिरस्कृत करने वाले को। अवगमय्य = जाकर। अवादीत् = बोला। विलोलालकं = चंचल बालों वाले को। निजोत्संगतले = अपनी गोदी में। निधाय = रखकर। स्थविराम् = वृद्धा को। निरीक्ष्य = देखकर। अवोचम् = मैं बोला। उत्सृज्य = दूर करके। अर्भकः = बालक। कान्तारं = वनको। शंकूत्पाटन क्षमं = सूलको निकालने में समर्थ को। अवेक्ष्य = देखकर। अवोचत् = बोली। कनीयान् = छोटा। आत्मजः = पुत्र। भूसुरस्य = ब्राह्मण को। विवाह्य = विवाह करके। अनपत्यतया = सन्तान न होने के कारण। परिणीय = विवाह कर। अलभत = प्राप्त करता था, प्राप्त किया। सासूयम् = ईर्ष्या से। मिषेण = बहाने से। आनीय = लाकर। तटिन्यां = नदी में। अक्षिपत् = फेंक दिया। उद्धृत्य = ऊपर उठा कर। परेण = दूसरे से। अम्भसि = जल में। प्लवमाना = तैरती हुई। तरोः = वृक्ष की। निधाय = रखकर। उह्यमाना = बहाई हुई, उठाई हुई। कालभोगिना = काले सर्प ने। अदंशि = मैं काटली गई। मदवलम्बी भूतः = मेरा सहारा बना हुआ। भूरुहः = वृक्ष। अगमयत् = पहुँचा दिया, पहुँचा देता था। गरलस्य = विषके। मयिमृतायां = मेरे मर जाने पर। शरण्यः = शरण देने वाला। शोच्यते = चिन्ता की जाती है। न्यपतत् = गिर पड़ी। दयाविष्टः = दया से व्याप्त। अपनेतुं = दूर करने के लिए। अक्षमः = असमर्थ। अन्विष्य = ढूंढ कर। प्रत्यागच्छन् = लौटता हुआ। उत्क्रान्त जीविताम् = जिसका जीवन निकल गया है, मृत। व्यलोकयत् = देखा, देखता था। तदनु = उसके बाद। पावक = अग्नि। विरच्य =

रचकर। अगतिं=जिसकी कोई गति नहीं, उसको। वेलायां=समय में। अश्रुततया=न सुनने के कारण। अशक्यम्=असमर्थ, किया न जा सकने वाला। आलोच्य=विचार कर। अमात्यनन्दनस्य=मंत्री-पुत्र का। अभिरक्षिता=संरक्षक। आनयामि=लाता हूँ। निशम्य=सुन कर। पुपोष=पोषण करता था। अधिरूढानैकवाहनः=जो अनेक (घोड़े हाथी आदि) वाहनों पर चढ़ा है। संस्कार जात=संस्कार समूह को। कोविदत्वं=पाण्डित्य को। नैपुण्यं=निपुणता को। निकर=समूह। पटल=समूह। दाक्ष्यं=चतुरता को। हारित्वं=आकर्षण, मनोहरता को। प्रावीण्य=प्रवीणता। मातंग=हाथी। पाटवं=पटुता, होशियारी। आयुध=शस्त्र। तत्तद् आचार्येभ्यः=उन उन के आचार्यों (विशेषज्ञों) से। लब्ध्वा=पा कर। विलसन्तं=विलास करते हुए को। निरीक्ष्य=देख कर। महीवल्लभः=राजा। अमन्दं=बहुत सारे को, जो कम न हो उसको। अविन्दत=भोगता था, पाता था।

अर्थ—इसके पश्चात्, दूसरे दिन, उसके आश्रम में रहने वाला वामदेव का शिष्य, देवताओं की सी कीर्ति वाले, कामदेव की मूर्ति का भी निरादर करने वाले, फूल से कोमल, एक कुमार को लाकर राजा को बोला, "हे देव! तीर्थ-यात्रा की अभिलाषा से कावेरी नदी के तट पर पहुंचा मैं, चँचल वालों वाले (इस) बालक को अपनी गोदी में रख कर रोती हुई एक वृद्धा को देख कर बोला, "हे वृद्धे! तू कौन है? यह बालक किसके नेत्रों को आनन्द देने वाला (पुत्र) है? वन में क्यों आई है? शोक का कारण क्या है?" वह (स्त्री) दोनों हाथों से अश्रुजल पोंछ कर, मुझे अपने (उसके) शोक-शूल को निकालने में समर्थ सा देख कर (जान कर) शोक के कारण को बताने लगी—

"हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! राजहंस के मन्त्री सितवर्मा का छोटा भाई सत्यवर्मा, तीर्थ यात्रा के प्रसंग से इस प्रदेश में आया था। उसने किसी ग्राम में एक ब्राह्मण की काली नाम की पुत्री से विवाह करके और उसके निःसन्तान रहने से उसीकी बहिन काञ्चनकांति से परिणय करके, उससे एक पुत्र प्राप्त किया (वह पुत्र प्राप्त करता था)। एक बार (एक समय), काली ईर्षा से, मुझ धाय के साथ, इस बालक को एक बहाने से लाकर, इस नदी

में फेंक गई। मैं एक हाथ से बालक को (जल से) ऊपर उठा कर, दूसरे से तैरती हुई, नदी के वेग से आये हुए किसी वृक्ष की शाखा को पकड़ कर, वहाँ (उसपर) बच्चे को रख कर, नदी वेग पर चढ़ी हुई (वेग में बहती हुई) वृक्ष में लिपटे हुए किसी काल सर्प ने डसली। मेरा अवलम्ब बना हुआ यह वृक्ष, इस देश में तट पर आ लगा (आया)। विष की उत्तेजना के कारण मेरे मर जाने पर, (इस) वन में कोई शरण देने वाला नहीं है, यह चिन्ता (शोक) कर रही हूँ (मेरे द्वारा की जा रही है)।"

दया से व्याप्त हृदय वाले मैंने मन्त्र बल से विष दूर करने में असमर्थ होते हुए, समीप के कुञ्ज में औषध विशेष को ढूँढ़ कर लौटते हुए ने (उसको) मृतावस्था में देखा (मैं देखता था)। उसके पश्चात्, उसके अग्निसंस्कार को रच कर, शोक से व्याकुल हृदय वाला मैं, इस अनाथ बालक को लेकर, सत्यवर्मा का वृत्तान्त सुनते समय, उसके ग्राम आदि के नाम न सुन सकने के कारण (क्योंकि वह बिना बताये मर गई थी), उसका ढूँढ़ना असम्भव सा है यह विचार कर, आपके मन्त्री पुत्र के आप अभिभावक हैं," इस विचार से आप के पास आरहा हूँ"। वह सुनकर सत्यवर्मा की परिस्थिति का अच्छी तरह निश्चय न होने से दुःखितमन राजा ने (अपने) सुमति नामक मन्त्री को सोमदत्त नाम का उसके भाई का (वह) लड़का अर्पित कर (दे) दिया (राजा पुत्र को अर्पित करता था)। वह भी, मानो उसका भाई आगया हो, ऐसा मानता हुआ, विशेष ध्यान से उसका पालन पोषण करने लगा।

इस प्रकार मिले (घरके अन्य) बालक मण्डल के साथ, बालक्रीड़ा का अनुभव करता हुआ, अनेक वाहनों (सवारियों) पर चढ़ा हुआ, राजवाहन, क्रमशः मुण्डन-यज्ञोपवीत आदि संस्कार समूहों को प्राप्त करता था। तब सारी भाषा-लिपियों (लिखावटों) के ज्ञान को, समस्त देशों की भाषाओं के पाण्डित्य को, छः अंगों (व्याकरण, ज्योतिष, आदि) के साथ वेद समूह के ज्ञान को, काव्य नाटक उपन्यास कहानी इतिहास चित्र (आश्चर्य कर) कथा आदि में कुशलता को, धर्म ज्योतिष तर्क मीमांसा आदि समस्त शास्त्रों की चतुरता को, कौटिल्य (चाणक्य), कामन्दकीय आदि नीति शास्त्रों में कुशलता को, वीणा आदि समस्त वाद्य साधनों की दक्षता को, संगीत साहित्य

की मनोहरता को, मणिमन्त्र ओषधि आदि माया प्रपञ्च (विस्तार जाल) की निपुणता को, हाथी घोड़ा आदि सवारियों पर चढने में पटुता को, विविध-शस्त्र प्रयोग की कुशलता को, उन उन के आचार्यों (विशेषज्ञों) से प्राप्त करके, (अब) यौवन से चमकते हुए (किन्तु) अपने कर्तव्यों में आलस्य रहित, उस बालक-मण्डल को देखकर, राजा, "मैं अब शत्रुओं के लिए दुर्लभ्य हूं (वे मेरे पास नहीं फटक सकते)" इस विचार से परम आनन्द को प्राप्त करता था।

अशरणा ब्राह्मणी

(अनाथ ब्राह्मणी)

शब्दार्थ—अन्येद्युः=दूसरे दिन। राजस्थान वर्तिनः=राजसभा में वर्तमान का। उपेत्य=पास जाकर। विज्ञापयामास—सूचित करता था। कांक्षिणी=चाहने वाली। दुर्गता=दुर्गति को प्राप्त। शिशुकद्वय संयुक्ता=दो छोटे बालकों से युक्त। द्वारि=द्वार पर। महीभृता=राजा के द्वारा। अनुज्ञाते =आज्ञा दिये जाने पर। कृशपाण्डु धूसरा=कमजोर और धूल से सनी या पाण्डु जैसी पीली। विशीर्णेन=फटे चिटे। वाससा=वस्त्र से। विधुरी कृता =व्याकुल की हुई। निभौ=सदृश। बिभ्रती=उठाये हुए। प्रविवेश= प्रविष्ट हुई। नप्रश्रयं=दीनता पूर्वक। कुलजा=कुलीन। दैवाद् युगपत्= =भाग्य से, एक साथ। शरणागत वत्सलम्=शरण में आये हुए जिसे प्यारे हैं, ऐसे को। अधुना=अब। प्रमाणम्=स्वतन्त्र हैं, मालिक हैं। सदयः =दया से युक्त। इयं=यह स्त्री। आदिशत्=आज्ञा दी। नीत्वा=ले जाकर। राज्ञा=राजा के द्वारा। विसृष्टां=भेजी हुई; विसर्जित। उपागतां= पास आई को। श्रद्धत्ते तरां=अत्यत्य श्रद्धा करती है। युग्मापत्यां=जुड़वां सन्तान वाली को। पश्यंती=देखती हुई। यामैकवृत्तित्व=लगातार उदय ही होते जाना। प्रजापतेः=ब्रह्माजी का। स्नान कारिणीः=स्नान करने

वालियों को। वेटिका:=सेविकाओं को, परिचारिकाओं को। स्नपनाय=स्नान कराने के लिये। ताभिः=उन्होंने। स्नापिता=स्नान कराई हुई। समापित-स्नानां=जिसने स्नान समाप्त कर लिया है, ऐसी को। गृहीताहारं=जिसने भोजन ग्रहण कर लिया है, उस को। महिषी=भैंस और रानी। प्राह=बोली। प्रतिवक्तु=उत्तर देने के लिये। प्रचक्रमे=उपक्रम करने लगी, चेष्टा करने लगी। निलय=घर। स्वानुरूपौ=अपने जैसे। यज्ञार्थ भृत सम्पदः=जिस ने यज्ञ के लिए ही सम्पत्ति का संग्रह किया है, ऐसे का। तनयां=पुत्री को। परिणीतवान्=विवाह लेता था। भार्यानुगतः=भार्या के साथ। लोकान्तरं=दूसरे लोक को। धृतगर्भां=गर्भवती को। विमुच्य=छोड़ कर। जहौ=छोड़ दिया। मयि आर्द्र शोकायां=मेरे नये शोक से द्रवित होने पर। दस्युभिः=चोरों ने। एत्य=आकर। विलुण्ठितः=लूट लिया। तिसृभिः=तीन के साथ। सार्धं=साथ। शील भ्रंशभयात्=स्त्रीत्वभंग के भय से। पलायिता=दौड़ ली। विदूरं=बहुत दूर। तदन्विता=उस (गर्भ) से युक्त। कृच्छ्र कर्मो पजीविनी=मेहनत से गुजर करने वाली। लोकात्=लोगों से। शीलैकपाथेया=केवल शील (लज्जा) का पाथेय (मार्ग में खाने का भोजन) वाली, सम्बल वाली। इह=यहां। उभौ=दोनों को प्रसूतास्मि=जन्म दिया हैं। वेधसा=ब्रह्माने। अपावृतम्=खोल दिया। आपदाम्=विपत्तियों का। गति=सामर्थ्य। योषिद् भूषण=स्त्रियों का अलंकार रूप। अपहाय=छोड़ कर। सदसि=सभा में। याचितः=माँगा। चरणान्तिकम्=चरणों का सामीप्य। प्रति हताः=ताड़ित, प्रहारित। विदेशगः=विदेश गया हुआ। बुध्यते=जाना जाता है। अवधार्य=जानकर, निश्चय करके। प्रीता=प्रसन्न। वितर्क्य=अनुमान करके, तर्कना करके। झटिति=जल्दी से। आनाय्य=मंगवा कर। अन्वयं=कुल को। अपृच्छत्=पूछती थी। भ्रातृ जाया=भाभी। संजातायाँ परिज्ञप्तौ=परिचय होने पर। ज्ञात-बन्धुक्षयः=जिसने भाई की मृत्यु को जान लिया है। निन्ये=ले गया। अनुशोच्य=शोक करके। बालकद्वितयान्वितां=दो बालकों से युक्त को। आश्वासयामास=आश्वासन (धैर्य) दिया। मुदन्विता=हर्ष से युक्त। नाम्नी=दो नाम। ताभ्याम्=उनके लिए। अनल्प द्रविणं=बहुत

धन को। वितीर्य=देकर। चिर सुख भाग्=देर तक सुख भोगने वाला।

अर्थ—दूसरे दिन, राजसभा में वर्तमान वत्सराज के पास जाकर पहरेदार ने सूचना दी, 'हे महाराज! द्वार पर दुर्दशाग्रस्त, दो छोटे बच्चों को लिये हुए, कोई ब्राह्मणी आपके दर्शनों को चाहती हुई खड़ी है"। वह सुन कर, राजा के द्वारा उसके प्रवेश की स्वीकृति मिल जाने पर, वह कमजोर और पाण्डु के समान (पीले से) वर्ण की, फटेचिटे वस्त्र से और भी व्याकुल बनी (फटे वस्त्र में से अंग दर्शन से, संकोच के कारण) दुःख और दैन्य जैसे (मानो दुःख और दीनता ही शरीर धारण किये हों) दोनों बालकों को उठाये हुए (राज सभा में) प्रविष्ट हुई। और उचित प्रणाम आदि जिसने कर लिए हैं ऐसी, (प्रणाम आदि करके) वह राजा को सविनय और करुणा पूर्वक बोली "हे देव! मैं कुलीन ब्राह्मणी हूं। भाग्य वश इस दुर्गति को प्राप्त हुई हूं। भाग्य से मेरे ये दोनों बालक एक साथ (जुड़वाँ) उत्पन्न हुए। अब मैं दीन हूं। इस कारण, यहां शरण में आये हुओं को प्यार करने वाले आपकी शरण में पहुंची हूं। अब, आपको अधिकार है (आप चाहे जैसा करें)।" वह सुन कर दया पूर्वक राजा ने "इसको ले जाकर देवी वासवदत्ता के अर्पण करो," प्रति हारी को ऐसी आज्ञा दी। इसके पश्चात् वह उसके (प्रति हारी के) द्वारा देवी के समीप पहुंचाई गई और उन्हें सौंप दी गई। राजा के द्वारा भेजी हुई, पहरेदार के द्वारा लाई, उस ब्राह्मणी के प्रति रानी ने बहुत श्रद्धा प्रकट की। जुड़वाँ सन्तान वाली उस दीन ब्राह्मणी को देखती हुई (रानी) सोचने लगी, 'अहो, भाग्य की यह कैसी निरन्तर विपरीतता है!' फिर, स्नान कराने वाली सेविकाओं को उस ब्राह्मणी को स्नान कराने के लिए आज्ञा देती थी। उन्होंने ब्राह्मणी को स्नान कराया, वस्त्र दिये और सुन्दर स्वादु भोजन कराया। तब स्वस्थ मन वाली, स्नान समाप्त किये हुए तथा भोजन किये हुए उस ब्राह्मणी को रानी बोली, 'किस की तू पत्नी है अथवा, तेरा वृत्तान्त क्या है?" तब ब्राह्मणी उत्तर देने का प्रयत्न करने लगी, 'देवि! मालव देश में कोई अग्नि दत्त नाम का ब्राह्मण था। वह लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का घर (पात्र) था। उसके शंकरदत्त और शान्तिकर नाम के अपने जैसे ही दो पुत्र हुए। उनमें शान्तिकर विद्यार्थी अकस्मात् अपने

पिता के घर से निकल कर कहीं चला गया। उसके बड़े भाई शंकरदत्त ने यज्ञ के लिये ही सम्पत्तियों का धारण करने वाले (एक) यज्ञ दत्त की कन्या से परिणय कर लिया। काल क्रम से, मेरे पति का वृद्ध पिता अग्निदत्त पत्नी के साथ परलोक को चल दिया (दोनों साससुर मर गये) मेरा पति पितृ-शोक से अन्धा बना तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से मुझ गर्भवती को छोड़ कर सरस्वती नदी के प्रवाह में इस (लौकिक) शरीर को छोड़ गया (डूबकर मर गया), यह समाचार जानकर मैं असह्य-शोक के वश में (शोक विव्हला) हो गई। फिर मेरे शोक विव्हल होने की दशा में (जब कि शोक अभी गीला हरा ही था) ही, अचानक चोरों ने आकर हमारा सारा घर लूट लिया। तत् काल ही, तीन (अन्य) ब्राह्मणियों के साथ, लज्जा भंग के भय से, थोड़े से कपड़े लिये हुए भाग ली॥ और बहुत दूर देश को जाकर, उनके (ब्राह्मणियों के) साथ एक मास तक. मेहनत मजदूरी से निर्वाह करती हुई ठहरी। फिर लोगों से अनाथों की शरण-वत्सराज के विषय में सुन कर दुःखित केवल शील (लज्जाशीलता) का सम्बल (मार्ग का भोजन) लिए मैं यहां आ गई। आकर ही एक साथ (इन) दोनों पुत्रों को जन्म दिया है। शोक, विदेश और उस पर यह दुगना (कष्ट कर) दरिद्रता में प्रसव (जन्म देना)। अहो ! ब्रह्मा ने आपत्तियों का द्वार खोल दिया (एक के बाद एक आने लगी)। इन बालकों को बड़ा करने (पालने) के लिए मेरी गति (सामर्थ्य) नहीं है. यह विचार कर, स्त्रियों के भूषण लज्जा को छोड़ कर, मैंने, प्रवेश करके, सभा में वत्सेश्वर से याचना की। उनकी आज्ञा से मैंने आपके चरणों का सामीप्य प्राप्त किया (आपके चरणों में स्थान मिला) और (यहाँ पहुँचते ही) मेरी सारी विपत्तियाँ लौट गईं, मानो द्वार पर से मार कर भगा दी गई हों। यही मेरा वृत्तान्त है। नाम से मैं पिंगलिका हूँ। हे देवि ! वह शान्तिकर (नामका) मेरा देवर विदेश को गया हुआ किस देश में रहता है, यह भी जाना नहीं जाता (ज्ञात नहीं है)।" जिसने अपना वृत्तान्त कह दिया है, ऐसी (उस) को कुलीन निश्चय करके (समझ कर), प्रसन्न हुई रानी तर्कना करके (कुछ सोच कर) यों बोली "यहाँ शांतिकर नाम का हमारा पुरोहित है। वह विदेशी है। वह तेरा

देवर ही होगा।" ऐसा कह कर, रानी जल्दी से शान्ति कर को बुला कर उससे उसका कुल पूछती थी (उसने उसका वंश पूछा)। जिसको निश्चय हो गया है, ऐसी रानी ने, अपना वंश परिचय दे चुके हुए उसको (शान्तिकरको), "यह तुम्हारे भाई की पत्नी है," यह कर वह ब्राह्मणी, दिखाई। परिचय हो जाने पर, बन्धु की मृत्यु से अवगत हुआ शान्तिकर उस पुत्रवती को ले गया। वहां भाई और पिता का शोक करके दो बालकों से युक्त उसको यथायोग्य आश्वासन (तसल्ली) दिया। प्रसन्न देवी वासव दत्ता ने भी उन बालकों के शान्ति सोम और वैश्वानर नाम रख कर, (तथा) उनको बहुत सा धन देकर, उस समस्त पुरोहितकुल को चिरकाल के लिए सुखी कर दिया।

सुभद्रां प्रति

(सुभद्रा के प्रति)

शब्दार्थ—सुदुर्मना = दुःखितमन वाला। आश्वासयत् = धैर्य देता मा = मत। वार्ष्णेयि = वृष्णि (यदु) वंश की पुत्री। सस्नुषा = पुत्र- के साथ। निष्ठैपा = यही स्थिति, दशा। कालनिर्मिता = यमराज बनाई। माशुचः = मत शोक कर। दिष्ट्या = सौभाग्य से। पितुः = के। क्षात्रेण = क्षत्रियों के से। जित्वा = जीत कर। सुबहुशः = बहुत से। प्रेषयित्वा = भेज कर। पुण्यकृतां = पुण्य-वानों के। सर्व काम- = सब इच्छाओं को पूरा करने वालों को। अक्षयान् = नित्य, स्थायी। । = वेद श्रवण से। प्रज्ञया = बुद्धि से। वीरसूः = वीर को जन्म देनी। वीरजा = वीर से उत्पन्न, वीर पुत्री। वीरबान्धवा = वीर भाइयों वाली। ाते = पायेगा। सैन्धवः = सिन्धुदेश का राजा जयद्रथ। अवलेप्रस्य = का। श्वः = कल को। श्रोष्यसे = सुनेगी। हृतम् = हरे हुए, काटे हुए समन्तपञ्चकाद् = कुरुक्षेत्र के एक प्रदेश से। वाह्यम् = उठाया जाने लायक,

बाहर। भव=हो जा। मा रुदः=मत रो। विशोका=शोकरहित। पुरस्कृत्य=सम्मान करके। प्राप्नुयामेह=प्राप्त करते हैं, यहां। व्यूढोरस्कः=दृढ छाती वाला। अनिवर्ती=न लौटने वाला। रथप्रणुत्=रथ को आगे हांकने वाला। वरारोहे=सुन्दरी। ज्वर=सन्ताप। जहि=छोड़ दे। अनुयातश्च=पीछे पीछे चलो। हत्वा=मार कर। महारथः=जो अकेला हजारों से लड़ता है। आश्वासय=आश्वासन दे। स्नुषां=पुत्र-वधू को। राज्ञि!=हे रानी। भृशम्=बहुत। नन्दिनि=हे आनन्द देने वाली! पार्थेन=अर्जुन ने। प्रतिज्ञातं=प्रतिज्ञा की है। चिकीर्षितम्=कार्य, जिसको कोई करना चाहता। जातु=कभी भी। मृषा=असत्य, अन्यथा। भर्तुः=पति का।

१-.२—अथार्जुन गृहं .... निर्मिता॥

अन्वय—अथ सुदुर्मना वासुदेवः, अर्जुन गृहं गत्वा, पुत्र-शोकार्ताम्, दुःखितां भगिनीम् आश्वसयत्।

हे वार्ष्णेयि! सस्नुषा कुमारं प्रति मा शोकं कुरु। हे भीरु! काल-निर्मिता सर्वेषां प्राणिनाम् एषा (एव) निष्ठा।

अर्थ—फिर, दुखितमन वाला वासुदेव, अर्जुन के घर जा कर, पुत्र-शोक में व्याकुल, दुःखित बहिन को आश्वासन देने लगा।

हे यदुवंशिनी! पुत्र वधू के साथ (तू) कुमार के प्रति (विषय में) शोक नहीं कर हे भयशीले! काल के द्वारा बनाई हुई (निश्चित की हुई) सब प्राणियों की यही गति (दशा) होती है।

३-४. कुले जातस्य .... गतिम्॥

अर्थ—वीर, विशेषतः क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए तेरे पुत्र का यह मरना (उसके) अनुरूप (उपयुक्त) ही है, (इस लिए) शोक मत कर।

सौभाग्य से, (अपने) पिता के जैसे पराक्रम वाला, महारथी, (वह) वीर क्षत्रिय की रीति से वीरों की अभिलषित दशा (गति) को प्राप्त हुआ है।

५. ६. ७.—जित्वा सुबहुशः .... तवपुत्रकः॥

अर्थ—बहुत प्रकार से शत्रुओं को जीत कर और (उन्हें) मृत्यु के पास

भेज कर (वह) समस्त कामनाओं को देने वाले पुण्यवानों के अविनश्वर (नित्य) लोकों को चला गया।

तपस्या से, ब्रह्मचर्य से, सुने हुए ज्ञान से (या वेद से) और बुद्धि से, सन्त लोग जिस गति (दशा) को चाहते हैं, तुम्हारा पुत्र उसी गति को प्राप्त हुआ है (मुक्त हो गया है)।

तू वीर प्रसविनी है, वीर की पत्नी है, वीर की पुत्री और वीरों बहिन है, (इसलिए) हे शोभने! शोक मत कर। वह (अभिमन्यु) प गति को प्राप्त हुआ है।

८. ६. १०.—प्राप्स्यते .... शस्त्रजीविनः ॥

अन्वयः—असौ बाल घातकः, क्षुद्रः, सैन्धवः, ससुहृद्गण बान्ध अस्यावलेपस्य फलं प्राप्स्यते।

अर्थ—वह बालक का घात करने वाला, नीच, सिन्धु देश का र (जयद्रथ) भी मित्र बन्धुओं के साथ, इस अभिमान का बदला पायेगा।

अन्वय—श्वः (त्वं) सैन्धवस्य समन्त पञ्चकाद् बाह्यं, हृतं शिरः श्रोष्यसे। (अतः) विशोका भव, मारुदः।

अर्थ—(वह) शूरवीर, क्षत्रिय के धर्म का सम्मान करके (रख कर) उस परम गति को प्राप्त हुआ है. जिसे यहाँ हम या अन्य से (युद्ध कौशल) से जीने वाले लोग प्राप्त करते हैं।

११.–१२—व्यूढोरस्को .... महारथः ॥

अर्थ—दृढ़ छातीवाला, महाबाहुओं वाला, (रण में) न लौटने वाला (विमुख न होने वाला), आगे रथ हाँकने वाला, तुम्हारा पुत्र स्वर्ग को गया है। (इसलिए) हे शोभने! सन्ताप को छोड़ दे।

(उस) बलवान् ने अपने पिता और मातृ पक्ष (मामा आदि) का अनुकरण किया (जैसे वीर वे हैं. वैसा ही उसने आचरण किया, अपने पिता और माता के वंशों के अनुरूप)। वह महारथी शूर हजारों शत्रुओं को मारकर (स्वयं) मारा गया।

१३-२४—आश्वासय........................तन्मृषा ॥

अर्थ—हे रानी! पुत्र वधू को आश्वासन दे, हे क्षत्राणि! मत बहुत शोक कर। कल अपनी अत्यन्त प्रिय बात (जयद्रथ का शिरश्छेदन) सुन कर हे आनन्द देने वाली! शोक रहित हो जाना।

अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है, वह वैसी ही होगी, अन्यथा (अपूर्ण) नहीं होगी। जो तुम्हारा पति करना चाहता है, वह कभी भी अन्यथा (झूठ) नहीं होगा (अवश्य वैसा ही होगा)।

गुरु-भक्ति

शब्दार्थ—पुरा = पहिले। पान्चाल्यं = पंजाबी को। प्रेरयामास = प्रेरित करता था, आज्ञा दी। केदारखण्ड = जलस्रोत का नाम। बधान = बांध दे। सन्दिष्टः = आज्ञा दिया हुआ। बध्नातुं = बांधने के लिए। नाशक्नत = समर्थ नहीं हुआ। क्लिश्यमानः = क्लेशपाता हुआ। संविवेश = प्रविष्टहो गया। शयाने = लेटजाने पर। उदकं = जल। तस्थौ = ठहरगया, रुक गया। प्रेषितः = भेजाहै। उक्तः = कहाहुआ। ऊचुः = बोले। तान् = उनको। आह्वयनाय = बुलाने के लिए। चकार = करताथा। एहि = आजा। उपतस्थे = उपस्थितहुआ। प्रोवाच = बोला। संरोद्धुं = रोकने के लिए। अवारणीयं = अनिवार्य। निःसरद् = निकलते हुए को। संविष्टः = घुसगया। विदार्य = फाड़कर। अभिवादये = नमस्कार करता हूँ। करवाणि = करूं। कमर्थं = किस अर्थ (प्रयोजन) को। आज्ञापयतु = आज्ञा दो। उत्थितः = उठा है। नाम्नः = नाम से। अनुष्ठितम् = किया। श्रेयः = कल्याण को। अवाप्स्यसि = प्राप्त करेगा। प्रतिभास्यन्ति = प्रकाश करेंगे। अनुगृहीतः = उपकृत। यथेष्टं = मन चाहे को। अपरः = दूसरा। गाः = गउओं को। अरक्षत् = रक्षा करता था। अहनि = दिन में। रक्षित्वा = रखवाली करके। अग्रतः = आगे। नमश्चक्रे = नमस्कार करता था। स्थूल-शरीरम् = मोटे शरीरवाले को। केन = किस वस्तु से। वृत्ति = पेटभरना, भोजन व्यापार। कल्पयसि = रचता है, बनाता है। भैक्ष्येण = भिक्षा से।

मह्यम् = मेरेलिए । अनिवेद्य = अर्पित न करके या न बताकर । उपयोक्तव्यम् = उपयोग करना चाहिये । चरित्वा = मांग कर । न्यवेदयत् = निवेदन करता था । अगृह्णात् = ले लेता था । निशामुखे = सायंकाल को । अशेषतः = पूर्णतया, सारी । गृह्णामि = ले लेता हूँ । इदानीं = अब । चरामि = करता हूं । न्याय्यम् = न्यायपूर्ण । यतः = क्यों कि । अन्येषां = दूसरों के । भैक्ष्योपजीविनां = भिक्षा से जीने वालों के । वृत्तिनिरोधं = उपजीविका में रुकावट को । लुब्धोसि = लोभी है । एतासां गवां = इन गउओं का । पयसा = दूध से । पयः = दूध । उपयोक्तु = उपयोग में लाने के लिए । अभ्यनुज्ञातम् = आज्ञा दी । प्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञा करके । न अश्नासि = नहीं खाता है । पिबसि = पीता है । फेनं = झाग को । इमे = ये । उद्गिरन्ति = उगलते हैं, गिरादेते हैं । त्वदनुकम्पया = तेरे ऊपर दया के कारण । पातु = पीने के लिए । अर्हसि = योग्य है । प्रतिश्रुत्य = प्रतिज्ञा करके । प्रतिषिद्धः = मना किया हुआ । उपयुंक्ते = उपयोग करता है । अर्कपत्राणि = आक के पत्तों को । क्षारतिक्तकटुभिः = खारे, तीखे और कड़ुवोंसे । चक्षुसि = आँख में । उपहतः = मारा हुआ। इतस्ततः = इधर उधर । भ्रमन् = घूमता हुआ । नागच्छति = नहीं आने पर । अस्ताचलावलम्बिनि = अस्ताचल का अवलंबन कर लेने पर, सायंकाल हो आने पर । नायाति = नहीं आता है । नियतं = निश्चय से । अन्वेष्टव्यः = ढूंढना चाहिये । अश्विनी कुमारौ = देवताओं के दिव्य वैद्यों का नाम । स्तुहि = स्तुति कर । देवभिषजौ = दिव्य वैद्य । चक्षुष्मन्तं = आँखों वाला । स्तोतु = स्तुति करने को । आजग्मतुः = आये । आहतुः = दो बोले । आवाम् = हम दोनों । अपूपः = पूड़ा । अश्नुहि = खाले । उत्सहे = उत्साह करता हूँ, साहस करता हूं । ऊचतुः = दो बोले । आवाभ्यां = हम दोनों ने । अभिष्टुताभ्याम् = स्तुति किये हुओं ने । उपभुक्तः = खालिया । गुरवे = गुरु के लिए । कुरुष्व = कर । लब्धचक्षुः = जिसको आँखें मिल गई हैं । सकाशं = पास । अभ्यवादयत् = वन्दना करता था । आचचक्षे = कहता था । समादिदेश = आज्ञा देता था । आस्यतां = बैठ जाओ । शुश्रूषुणा = सुनने की इच्छा वाले ने, सेवा की इच्छा से । भवितव्यम् = होना चाहिये । शुश्रूषणपरः = उपदेश सुनने की इच्छा में रत । नियोज्यमानः = लगाया जाता हुआ । क्षुत् = भूख । दुःखसहः

=दुःख सहने वाला । अप्रतिकूल=सीधा, इन्कार नहीं करने वाला । परितोषं =प्रसन्नता को । जगाम=प्राप्त हुआ । अवाप=पाता था ।

(पहिले शिष्य की कहानी)

अर्थ—पहिले समय में कोई धौम्य नाम का ऋषि था । उसके तीन शिष्य थे—आरुणि, उपमन्यु और वेद । उसने एक पांचाल देश के निवासी आरुणि को आज्ञा दी, "जा, बेटा ! केदारखण्ड (एक पानी का सोता) को बांध दे ।"

वह उपाध्याय द्वारा आज्ञप्त (आज्ञा दिया हुआ) पांचाल निवासी आरुणि, वहां जाकर, केदार खण्ड को बांधने के लिए समर्थ नहीं हुआ । वह क्लेश पाता हुआ उपाय सोचने लगा । "अस्तु, ऐसा करूंगा," यह सोच कर वह केदार खण्ड के अन्दर प्रविष्ट होगया और उसके वहां (सोते में) लेट जाने पर पानी रुक गया (स्रोत के मुहाने में घुस कर लेट गया, पानी रुक गया) ।

तब, कभी उपाध्याय ने शिष्यों को पूछा, "पांचालीय आरुणि कहां गया ?" वे (शिष्य) उसके (उपाध्याय के) प्रति बोले, "भगवन् ! तुमने ही भेजा है, "जा केदारखण्ड को बांध दे," ऐसा कहकर ।" वह (उपाध्याय) इस प्रकार कहा हुआ उनको बोला, "इसलिए, वहां हम सब चलें, जहां वह गया है ।"

वह (उपाध्याय) वहां जाकर, उसको बुलाने के लिए, शब्द करने लगा (आवाज देने लगा), "हे आरुणि ! पाञ्चालीय ! तू कहां है ? आ जा ।" वह आरुणि गुरु के उस वाक्य को सुनकर, अकस्मात् उस केदारखण्ड से ऊपर उठकर, उस उपाध्याय के पास उपस्थित हुआ और उसको बोला, "मैं यहां केदारखण्ड में, न रुकने लायक निकलते हुए जल को रोकने के लिए घुस गया हूं । भगवान् (आप) के शब्द को सुनकर, सहसा, केदारखण्ड को फाड़कर, आपके पास उपस्थित हुआ हूँ । सो आपको अभिवादन (नमस्कार) करता हूं । आप आज्ञा दें, क्या काम करूं ।"

उसके द्वारा इस प्रकार कहा हुआ उपाध्याय उत्तर में बोला, "क्योंकि तू केदारखण्ड को फाड़कर ऊपर निकला है, इसलिए तू उद्दालक (ऊपर को

उखाड़ने वाला) नाम से होगा। और क्यों कि तूने मेरे वचन को पूर्ण किया है (पाला है), इसलिए कल्याण प्राप्त करेगा। (तुझ में) सब वेद प्रकाश करेंगे और सब धर्म शास्त्र भी।" इस प्रकार उपाध्याय से अनुग्रह किया हुआ और इस प्रकार कहा हुआ वह आरुणि मनचाहे देश या नगर को चला गया।

(दूसरे शिष्य की कहानी)

फिर, उसी धौम्य का उपमन्यु नाम का दूसरा शिष्य था। उसको उपाध्याय ने भेजा, "बेटा! उपमन्यु! गउओं की रखवाली कर।" वह उपाध्याय की आज्ञा से गउओं की रक्षा करने लगा।

और, वह दिन में गउओं की रखवाली करके शाम को गुरु के घर को आकर, उपाध्याय के आगे खड़ा हो कर नमस्कार करता था। उसको उपाध्याय ने स्थूल (मोटे) शरीर वाला देखा और उसे कहा, "बेटा! उपमन्यु! किस वस्तु से भोजन व्यापार करता है (क्या खाता है)? बहुत मोटा है।" उसने उपाध्याय को उत्तर दिया, "श्रीमान्! भिक्षा से भोजन व्यापार करता हूँ।"

उपाध्याय उसको बोला, "मुझे बिना अर्पण किये भिक्षा का उपयोग नहीं करना चाहिये।" उसने "अच्छा" कह कर भिक्षा करके (माँग कर) उपाध्याय के अर्पण करदी और (तब) उस उपाध्याय ने उससे सारी भिक्षा लेली।

वह फिर गउओं की रखवाली करने लगा। दिन में रखवाली कर के, गुरुकुल में आकर, गुरु के सामने खड़ा होकर नमस्कार करता था।

उसको उपाध्याय तोभी मोटा देखकर बोला, "बेटा! उपमन्यु! मैं पूर्णतया तेरी सारी भिक्षा लेलेता हूँ। अब किस वस्तु से भोजन व्यापार करता है? इस प्रकार कहा हुआ वह उपाध्याय के प्रति बोला, "आपके अर्पण करके, दूसरी भिक्षा करता हूँ। उसीसे उदर पूर्ति करता हूँ।"

उसके प्रति उपाध्याय बोला, "यह न्यायोचित कार्य नहीं है॥ क्योंकि इस प्रकार तो तू अन्य भी भिक्षावृत्ति से जीने वालों की वृत्ति (उप-

जीविका) में रुकावट डालता है, ऐसे वर्तमान (करता हुआ) तू लोभी हो गया।" वह "ऐसा ही सही" कह कर गउओं की रखवाली करने लगा। और रखवाली करके, फिर, उपाध्याय के घर आकर, उपाध्याय के सामने खड़ा हो कर प्रणाम करता था।

उसको फिरभी स्थूल ही देख कर वह फिर बोला, "पुत्र! उपमन्यु! मैं तेरी सारी भिक्षा ग्रहण करलेता हूँ, और भी (भिक्षा) नहीं करता है। बहुत मोटा है, किस वस्तु से भोजन व्यापार करता है?" वह उस प्रकार कहा हुआ उपाध्याय को बोला, "श्रीमान्! मैं इन गउओं के दूध से वृत्ति करता हूँ (दूध पीता हूँ)।"

उसको उपाध्याय बोला, "दूध का उपयोग करने के लिए मैंने तुम्हें आज्ञा नहीं दी।" वह "ऐसा ही" कह कर, प्रतिज्ञा करके, गायों की रखवाली करके, फिर उपाध्याय के घर जाकर गुरु के सामने स्थित हो नमस्कार करता था।

उसको उपाध्याय स्थूल ही देख कर बोला, "पुत्र उपमन्यु! भिक्षा नहीं खाता है। न औरही (भिक्षा) करता है, दूध नहीं पीता, बहुत मोटा है। किस चीज से जीवन निर्वाह करता है?" वह इस प्रकार कहा हुआ उपाध्याय को बोला, "भगवन्! फेन (झाग) पीता हूँ जो ये (बच्छे) माता के थनों का पान करते हुए गिरा देते हैं।"

उसको उपाध्याय ने कहा "ये गुणवान् बच्छे, तेरे ऊपर दया के कारण बहुत झाग बाहर गिरा देते हैं। सो इन बच्छों की भी जीविका में तू व्यवधान डालता है। ऐसी स्थिति में तू झाग के पीने के भी योग्य नहीं है।"

वह, "अच्छा" यह प्रतिज्ञा करके फिर गायों की रखवाली करने लगा। इस प्रकार हटाया हुआ वह (अब) भिक्षा नहीं खाता, न और (भिक्षा) करता है। दूध नहीं पीता और न झाग का ही उपयोग करता है।

इसके अनन्तर कभी, वन में, भूख से पीड़ित हुआ वह आक के पत्तों को खा लेता था (उसने पत्ते खालिये)। वह उन खाये हुए, खारे तीखे कड़वे आक के पत्तों से आँखों में पीड़ित हुआ अन्धा हो गया। फिर वह अन्धा भी इधर उधर घूमता हुआ कुए में गिर पड़ा। फिर, उसके न आने पर,

और सूर्य के अस्ताचल पर पहुँच जाने पर, उपाध्याय शिष्यों को बोला, "उपमन्यु क्यों नहीं आता ?" उन्होने कहा, "गायों की रक्षा के लिए वनको गया है।" उपाध्याय (फिर) बोला, 'उपमन्यु को मैंने मना कर दिया था, वह अवश्य क्रोधित हो गया है क्योंकि इतनी देर होने पर भी नहीं आता है। इसलिए ढूंढना चाहिये।'

ऐसा कह कर, शिष्यों के साथ उपाध्याय वनमें जाकर उसके बुलाने के लिए आवाज देने लगा, 'हे उपमन्यु ! पुत्र ! तू कहाँ है ?"

उसने उपाध्याय के वचन को सुन कर ऊँचे जोरसे उत्तर दिया, 'मैं इस कुए में गिरपड़ा हूँ।' उसको उपाध्याय ने उत्तर दिया, 'कैसे तू इस कूप में गिरपड़ा ?' वह उपाध्याय को बोला 'आक के पत्तों को खा कर अन्धा हो गया हूँ। अतः-कूप में गिरपड़ा।' उसको उपाध्याय बोला, 'अश्विनी-कुमारों की स्तुति कर, वे दिव्य वैद्य तुझे आँखों वाला बना देंगे।'

वह उपमन्यु उपाध्याय के द्वारा ऐसे कहा हुआ अश्विनी-कुमार देवताओं की स्तुति करने लगा। उसके द्वारा स्तुति किये हुए देवताओं के वैद्य (दोनों) आगये और उसको बोले, 'हम (दोनों) प्रसन्न हैं, यह तेरे लिए अपूप (पूढ़ा चीला) है, इसको खाले।'

ऐसे कहे हुए ने उसने उत्तर दिया, 'हे देवताओ ! गुरु को अर्पण किये बिना, मैं इस पूड़े का उपयोग करने का उत्साह नहीं करता (नहीं खाता)। तब उसको अश्विनी-कुमार बोले, 'तेरे उपाध्याय के द्वारा स्तुति किये हुए हम (दोनों) ने पहिले समय में, (तेरे उपाध्याय को भी) पूढ़ा दिया था। उसने (गुरु ने) उसे (अपने) गुरु के अर्पण किये बिना ही खालिया था, तू भी वैसा ही कर, जैसा कि उपाध्याय ने किया था।'

वह इस प्रकार कहा हुआ, अश्विनी-कुमारों की कृपा से आँखों को प्राप्त किये उपाध्याय के पास आकर उसको नमस्कार करता था और सारा वृत्तान्त सुनाता था। वह (उपाध्याय) इस पर प्रसन्न हो गया और बोला, 'जैसा कि देवताओं के वैद्यों ने कहा था, वैसेही तू कल्याण प्राप्त करेगा। समस्त वेद और समस्त शास्त्र (तेरे लिए) प्रकाश करेंगे (तुझे उनके अर्थों का ज्ञान हो जागगा)।' उस उपमन्यु की यह परीक्षा थी।

फिर, उसी धौम्य का वेद नाम का अन्य शिष्य था। उसको उपाध्याय ने आज्ञा दी, "पुत्र वेद ! कुछ काल यहाँ मेरे घर में ठहरो,सेवा भाव की इच्छा से रहना और मेरी सेवा करना, तेरा कल्याण हो जायगा।"

वह "अच्छा" ऐसा कहकर, गुरु सेवा करने की इच्छा वाला लम्बे समय तक गुरुकुल में रहा। गुरु के द्वारा नित्य ही कार्यों में लगाया जाता हुआ, शीत, उष्ण, भूख और प्यास को सहने वाला, सभी जगह अप्रतिकूल (ना न करने वाला, तत्पर) था (किसी काम से विमुख नहीं होता था)।

देर के बाद उस पर गुरु प्रसन्न हुआ। और उसकी प्रसन्नता से वह (वेद) कल्याण और समस्त ज्ञान को प्राप्त कर लेता था। वेद की यह परीक्षा थी।

शुकस्य मनोदशा
(तोते के मन की दशा)

शब्दार्थ—अतिकष्टासु=अत्यन्त कष्ट पूर्णाओं में। जीवितनिरपेक्षाः=जीवन की उपेक्षा करने वाले, जीवन की अपेक्षा (आवश्यकता) न रखने वाले। मततरं=प्रियतर। जन्तूनां=प्राणियों का। उपरते=मरने पर। अविकलेन्द्रियः=पूरी इन्द्रियों (शरीर) से युक्त। प्राणिमि=सांस लेता हूँ। अम्बा=माता। नियम्य=रोक कर। आप्रसवदिवसाद्=जन्म के दिन से ले कर। परिणत वयसा=परिपक्व आयु से। सता=होते हुए ने। महान्तमपि=बड़े भारी को भी। तातेन=पिता ने। एकपदे=एकदम। अमी=ये। अनुगच्छति=पीछे चलता है। कांचित्=किसी एक को। खली करोति=खल (दुष्ट) बना देती है। ईदृग्=ऐसा। आयासयति=कष्ट दे रही है। रवानुकारि=शब्द का अनुकरण करने वाला। कलहंसविरुतम्=राजहंस का शब्द। सारसरसितानि=सारस के कल गान, ध्वनियां। विप्रकर्षात्=दूर से। कष्टा=कष्ट दायिनी। अनवरत=निरन्तर। करैः=किरणों से। विकिरति=बिखेरता है। वर्तते=वर्तमान है। उपजनयति=उत्पन्न करता है। पांसु=

धूलि। भूः=भूमि। अवसन्नानि=व्याकुल। अल्पमपि=थोड़े को भी। अलं=समर्थ। अप्रभुः=अस्वामी, अनधिकारी। सीदति=दुःखित होता है। उपपादयेत्=करदे, बना दे।

अर्थ—संसार में, निश्चय से (खलु) प्राणियों की इच्छाएं अतिकष्टकर दशाओं में भी जीवन की ओर निरपेक्ष नहीं होतीं (मनुष्य मरना कभी नहीं चाहता)। समस्तप्राणियों की जीवन से बढ़कर अन्य कोई भी वस्तु अधिक प्रिय नहीं होती संसार में, जो कि मैं पिता के मर जाने पर भी, काम करती हुई (समर्थ) इन्द्रियों से युक्त फिर भी प्राण धारण कर रहा हूँ। मुझ निर्दय और कृतघ्न को धिक्कार है। अहो! निश्चय से मेरा हृदय बड़ा दुष्ट है। माता के परलोक को चले जाने पर (अपने) शोक के वेग को रोक कर, (मेरे) जन्म से, परिपक्व (वृद्ध) अवस्था में वर्तमान होते हुए ने भी पालनकरने के बड़े भारीक्लेश को भी, स्नेहवश, न गिनते हुए ने, पिता ने उन उन उपायोंसे जो मैं पाला, उस सबको मैंने एक पद में (क्षण भर में) ही भुला दिया। ये प्राण बड़े कंजूस हैं, जो कहीं जाते हुए उपकारी पिता के पीछे आज भी (अभी भी) नहीं जाते (निकल जाते)। जीवन की लालसा किसको सर्वथा दुष्ट नहीं बना देती (जीवन के मोह में सभी दुष्ट हो जाते हैं), जो इस दशा में भी प्यास —जल की तृषा—सता रही है? अभी भी सरोवर का तट दूर ही है। जैसे कि, जल देवता के नूपुरों के शब्द जैसा राजहंसों का यह शब्द अभी भी दूर है; सारसों का कलरव साफ नहीं सुनाई पड़ता, कमल पुष्प की परिमल (सुगन्धि) दूर से आ रही है। दिन की यह कष्टदायिनी दशा है। जैसेकि, आकाश के मध्य में वर्तमान सूर्य, निरन्तर अपनी किरणों (हाथों) से चमकती हुई धूप को बिखेर रहा है,वह (सूर्य) और भी अधिक प्यास उत्पन्न करता है, भूमि सन्तप्त (गर्म) बालू वाली है। भारी प्यास से व्याकुल मेरे अंग थोड़ा सा भी चलने केलिए समर्थ नहीं हैं। अपने आपका मैं स्वामी नहीं हूँ(शरीर मेरे वश में नहीं है)। मेरा हृदय दुःख पा रहा है। आंख भी अंधेरे को प्राप्त हो रही है (अंधेरा छा रहा है आंखों में)। काश! (अपिनाम) क्रूर विधाता न चाहते हुए की भी मेरी मृत्यु कर दे?

तपस्या-प्रभावः

(तपस्या का प्रभाव)

शब्दार्थ—ब्रह्मतेजोबलम् = ब्राह्मतेज का बल । बलम् = वास्तविक बल (लाक्षणिक प्रयोग है)। तेजसा = तेज ने । सपुत्रदारः = पुत्र और स्त्री के साथ । पर्यटनाय = घूमने के लिए । ससैन्यः = सेना के साथ । प्रतस्थे = चलपड़ा । परिक्रम्य = परिभ्रमण कर, परिक्रमा कर । क्षेत्राणि = प्रदेशों को । संसेव्य = सेवन करके, उनका आनन्द लेकर । अभ्याजगाम = ओर आगया । अनामयं = कल्याण, क्षेम, कुशल । पृष्ट्वा = पूछ कर । यथार्हं = यथोचित । उपचचार = उपचार किया, सेवा की । चिकीर्षुः = करने की इच्छा वाला । काम-दुघा = इष्टवस्तु देने वाली । शवलां = चितकबरी, अनेक रंगों वाली को । आतिथ्य संभार भरणाय = अतिथि—स्वागत के साधन जुटाने के लिए, भार उठाने के लिए । कामदोग्ध्री = कामनाओं को देने वाली । पड्रसोपेतं = छः रसों से युक्त को । वटक = मिठाई विशेष । पर्यटा = पपड़ी, मिठाई विशेष । अपूपः = पूड़ा, चीला । अतिरस = भोजन द्रव्य विशेष । उपस्कारैः = व्यंजनों से, पदार्थों से । जनयामास = उत्पन्न करती थी । उपभुज्य = खा कर । काष्ठां = कोटिको । वनस्थः = वनवासी । फलाशनः = फल भोजी । जानपदानि = नगरों को । असार्वभौम सुलभं = संसार मेंदुर्लभ को । नूनं = निश्चय से । स्वर्धेनोः = दिव्यगायका । विलासितम् = विलास,शोभाको । विचिन्त्य = सोचकर । सुरभिं = गाय को । स्वी चिकीर्षुः = अपनाने की (लेने की) इच्छा करता हुआ । श्लाघ्यतमेन = प्रशंसनीयतम, अत्यन्त प्रशंसनीय से । रत्नहारी = रत्नों को हरने वाला । अग्नि-होत्रादि = हवन आदि । निखिल = समस्त । निर्वर्तन = निभाना, पूर्ण करना । नानुमेने = नहीं अनुमोदन (हाँ) करता था ।

विनिमयेन = अदलाबदला से। दातुं = देनेकेलिए। निर्बन्ध = बन्धन मेंलाया, विवश किया। उपागमत् = पास आया, सहमत हुआ। तस्मै = उसके लिए। अवनिपालः = राजा। स्वनिर्देश = अपनी आज्ञा। आविशन् = प्रवेश करता हुआ। आचकर्ष = खींचता था। आक्रोशन्तीं = क्रन्दन करती हुई को। प्रेरिता = आज्ञप्ता। विबुध विस्मयावहं = देवताओं को विस्मित करने वाला। विभीषणं = बहुत भयंकर। प्रावर्तत् = प्रारम्भ हुआ। निःशेषं = पूर्ण। आयुधपाणयो = जिनकेहाथ मेंशस्त्र हैं। अभ्यधावन् = हल्लाकिया। ब्रह्मिष्ठेन = ब्रह्मनिष्ठ ने। हतपुत्रः = जिसके पुत्र मार दिये हैं। प्रवरः = श्रेष्ठ। भग्नदंष्ट्रः = = टूटी दाढ़ वाला। सद्यः = तत्काल। निष्प्रभतां = कांतिहीनता को, मलिनता को। हत शेषं = मरनेवालों में से बचे हुए को। संप्रेष्य = भेजकर। निर्वेदं = वैराग्य को। आपन्नः = प्राप्त हुआ। हिमवत्पार्श्व = हिमालय के पास के प्रदेश को। अभिकांक्षन् = आकांक्षा रखता हुआ। चचार = करता था, आचरण करता था। साङ्गोपाङ्ग = पूर्ण। प्रददौ = देता था। दृप्तः = अहंकारी। मन्वानः = मानता हुआ। मुमोच = छोड़ता था। कालानलोपमैः = काल-अग्नि के सदृशों से। कृत्स्नं = सारा। नादिग्भ्यः = अनेक दिशाओं के लिए (ओर)। पलायां बभूवुः = भाग गये। विधूममिव = मानो बिना धूएँ के। उद्यम्य = उठाकर। जग्रास = ग्रसलिया, नष्ट करदिये। निःश्वसन् = लम्बी सांसें छोड़ता हुआ। निर्वीर्यः = निःसत्व, निर्बल। प्रशंसन् = प्रशंसा करता हुआ। सम्पादनाय = निर्माण करने को, उत्पन्न करने को। तप्तुं = तप करने को। ययौ = चला गया।

अर्थ—क्षत्रिय का बल धिक्करणीय बल है, ब्रह्म तेज का बल ही वस्तुतः बल है। पहिले समय में, ब्राह्मण के तेज ने क्षत्रिय के तेज को पराजित कर दिया था।

पूर्वकाल में बड़ा भारी क्षत्रिय विश्वामित्र, कभी, पुत्र स्त्री के साथ और सेना से युक्त पृथ्वी का भ्रमण करने के लिए चला। बहुत से देशों की परिक्रमा करता हुआ (घूमता हुआ) और बहुत से पवित्र स्थानों का भ्रमण करता हुआ, क्रमशः ब्रह्मर्षि वशिष्ट के आश्रम की ओर आगया। उस अभ्यागत (अतिथि) महाराज की कुशल मंगल पूछ कर, वशिष्ट ने, फल मूल आदि

के उपहारों से उनकी सेवा (अभ्यर्थना) की । फिर परिवार के साथ उसके सत्कार करने की इच्छा करता हुआ वशिष्ठ, आतिथ्य का भार उठाने के लिए इष्टपदार्थ देने वाली, चितकबरी नन्दिनी (दिव्य गौ) को आज्ञा देता था। वह इष्ट वस्तु देने वाली भी, तत्काल, षड्रसयुक्त, मोदक, टक (वड़ी आदि) पपड़ी या पापड़, पूड़ा, अतिरस (रसगुल्ला) आदि अनेक भोज्यों से युक्त आश्चर्यकर, मनुष्य के लिए दुर्लभ चार प्रकार के अन्न को उत्पन्न करती थी। सपरिवार उसको खाकर, राजा तृप्ति और आश्चर्यसीमा को पहुंचा हुआ (चढ़ा हुआ) सोचने लगा, "यह मुनि वनवासी है, केवल कन्द मूल फल भोजी है और नाहीं इसे नागरिक वस्तुएं ही सुलभ हैं। सो, कैसे, इसने हमारा संसार में दुर्लभ ऐसा आतिथ्य सत्कार किया ? निश्चय ही, यह सब, दिव्य गौ के प्रभाव का ही चमत्कार है।" इस प्रकार सोचकर, गाय को लेने की इच्छा करता हुआ, महर्षि को बोला, "महर्षे ! आपके इस अत्यन्त प्रशंसनीय आदर सत्कार से सपरिवार मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ (तृप्ति को प्राप्त हुआ हूं)। किन्तु, जो दिव्य गाय नन्दिनी है, यह गायों में रत्नभूत है। और, राजा रत्नो को हरने (लेने) वाला होता है, यह सर्वविदित है, इसलिए तुम इस नन्दिनी को मुझे दे देने में योग्य हो (तुम्हारे लिए इसे मुझे दे देना उचित है)।" यह सुनकर मुनि (वशिष्ठ) हवन आदि सब (धार्मिक) कार्यों को पूर्ण करने में साधनभूत, इष्ट पदार्थ को देने वाली उस (गाय) को, उसके लिए, देने को तैयार नहीं हुआ (हां नहीं की)। फिर उस राजा ने अपनी गाय के बदले में उस नन्दिनी को देने के लिए मुनि को बहुत प्रकार से विवश किया (बाधित किया)। तो भी मुनि सहमत नहीं हुआ। फिर वह अभिमानी राजा, अपनी आज्ञा के उल्लंघन को न सहता हुआ, क्रोधाविष्ट बना, जबर्दस्ती गौ को (अपनी ओर) खींचता था। और वह खिंची हुई, ऊँचे ऊँचे क्रन्दन करती (डकारती) हुई, मुनि द्वारा आज्ञा दी हुई, म्लेच्छ आदि की अनेक सेनाएं तत्काल ही उत्पन्न करती थी। फिर दोनों सेनाओं का, देवताओं को भी विस्मित करने वाला बड़ा भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। तब, क्रमशः (एक एक करके) राजा की सेना गौ की सेना द्वारा पूर्णतया नष्ट करदी गई। इसके पश्चात्, विश्वामित्र के सौ पुत्र अत्यन्त क्रोधित हुए, हाथ में शस्त्र

लिये महात्मा की ओर भागे (हल्ला बोला)। उस भगवान् वशिष्ठ ने उन सबको अपनी हुंकार से ही भस्म में मिला दिया (नष्ट कर दिया)। इस प्रकार वशिष्ठ द्वारा जिसके पुत्र और सेना नष्ट कर दिये गये हैं ऐसा क्षत्रियों में श्रेष्ठ (विश्वामित्र) टूटी हुई दाढ़ वाले हाथी के समान तत्काल कांतिहीन (मलिनाभ) होगया। फिर मृतकों में से बचेहुए एक पुत्र को, राज्य का पालनकरने लिए, नगरकी ओर भेजकर, अत्यन्त वैराग्य को प्राप्त हुआ, हिमालयके पार्श्वमें जाकर महादेव की प्रसन्नता प्राप्त करने की आकांक्षा करता हुआ घोर तप करने लगा। समय के जाते जाते, प्रसन्न हुए महादेव ने उसे रहस्य के सहित पूर्ण धनुर्वेद (शस्त्रविद्या-अथर्ववेद का एक भाग) और ब्रह्मास्त्र आदि समस्तशस्त्र प्रदान कर दिये। उनको पाकर भारी अहंकार से भरा हुआ महर्षि वशिष्ठ को वही (शत्रु) मानता हुआ फिर उसके आश्रम में आकर, दिव्य अस्त्र (जो फेंक कर मारा जाता है) छोड़ने लगा। काल अग्नि के समान उन (शस्त्रों) के द्वारा सारा तपोवन पूर्णतया जल गया। तपोवन में निवास करने वाले मुनिगण, मृग, पक्षी डरे हुए अनेक दिशाओं को भाग गये। फिर आश्रम को सूना देखकर, अत्यन्त क्रोधित वशिष्ठ ने, बिना धूएं वाली काल की अग्नि जैसे और यमराज के दण्ड के समान (भयंकर) ब्रह्म दण्ड को उठाकर विश्वामित्र द्वारा प्रयोग में लाये हुए माहेश्वर (महादेव के) ब्राह्म (ब्रह्मा के) आदि समस्त दिव्य अस्त्रों को ग्रस लिया (तिरोहित कर दिया)। इस प्रकार ब्राह्मण के तेज द्वारा जिसके सब दिव्य अस्त्र ग्रस लिये गये हैं, ऐसा विश्वामित्र टूटी हुई दाढ़वाले हाथी के समान, लम्बी सांसें छोड़ता हुआ, निर्वीर्य (सामर्थ्यहीन) और चिन्ता से व्याकुल होकर, ब्रह्म तेज की प्रशंसा करता हुआ और क्षत्रिय के तेज की निन्दा करता हुआ, ब्रह्मत्व प्राप्त (या उत्पन्न) करने को तपस्या करने के लिए रानी के साथ दक्षिण दिशा को चल दिया।

———=

भीमस्य दयालुता

(भीमसेन की दयालुता)

शब्दार्थ—सुतत्रय = तीन पुत्र। कलत्र = स्त्री। परिवृत: = परिवारित घिरा हुआ। घटोत्कचः = भीमका हिडिम्बा से उत्पन्न पुत्र। सन्तापयति = संताप देता है। न गन्तव्यम् = नहीं जाना चाहिये। मोक्ष = छुटकारा। समयतः = शर्त से...... । उपवासनिसर्गार्थं = व्रत खोलने के लिए। प्रतिगृह्य = पकड़ कर। आनेतव्यः = ले आना चाहिये। आसादितः = प्राप्त कर लिया। विसर्जय = विदा करो। राक्षसापद = राक्षसाधम, अधमराक्षस। अर्थितः = मांगा हुआ। मुञ्चसि = छोड़ता है। उपयास्यसि = प्राप्त होगा। परिणामेन = वृद्धावस्था से, परिपक्वावस्थासे। सुतापेक्षी = पुत्रोंकी आवश्यकतारखने वाला। होष्यामि = हवन कर दूँगा। विधिसंस्कृतं = विधि पूर्वक। गृहीतफलेन = जिस का फल मिल चुका है, ऐसे से। अभिमतः = स्वीकार किया हुआ अनुगत। अपसर = दूर हट। ब्रवीमि = बोलता हूँ। ब्रूहि = बोल। मोक्तुं = छोड़ने के लिए। अर्हति = योग्य होता है। गुरुवृत्तिं = पिता के व्यवहार को। ब्रह्मवादिभिः = ब्रह्म ज्ञानियों ने। यास्यामि = जाऊँगा। अनुस्मरन् = स्मरण करता हुआ। अर्हः = योग्य।

आपदं = विपत्ति को। इष्टतमम् = प्रियतम। कनिष्ठ = छोटा। अनिष्टः = न चाहा हुआ, अप्रिय। ब्राह्मणवटोः = ब्राह्मण बालक का। अवाप्नुहि = प्राप्त कर। अम्ब = माता। परिस्वजस्व = आलिंगन कर। स्वस्तिः = कल्याण हो। प्रकल्पितपरलोकस्य = जिसके लिए परलोक जाना निश्चित है। पिपासा = प्यास। प्रतिकारं = इलाज, उपाय को। दृढव्यवसायिन् = हे दृढ़ उद्योग वाले। अतिक्रामति = निकल रहा है। परिमुषिताः = लूट लिये गये।

चिरायते=देर लगा रहा है। आहूयतां=बुलाइये। अतिराक्षसं=राक्षस से भी बढ़कर। मर्षयतु=क्षमा कर। श्रोतुम्=सुनने के लिए। आह्वयामि=बुलाता हूँ। प्राप्तोऽस्मि=आगया हूं। मध्यमः=बीच का, दो भाइयों के बीच में होने वाला। उपगम्य=पास आकर। भेतव्यम्=डरना चाहिये। दिशि=दिशा में। मातुलः=मामा। उपनयनार्थं=विवाह के लिए। प्रस्थितोऽस्मि=चला हूं। अरिष्टः=मंगल। हन्तुकामः=मारने की इच्छा वाला। अभ्युपैति=सामने आता है। निग्रहिष्यामि=पकड़ूँगा। अपराध्यसि=अपराध करता है। मुच्यतां=छोड़ दो। द्विजसत्तमः=ब्राह्मणों में उत्तम। मुच्यते=छोड़ा जाता है। विस्रब्धं=चुपचाप, शान्ति से। गुरुशुश्रूषुः=गुरुजनों की सेवा का इच्छुक। किल=वस्तुतः। दैवतम्=देवता। गृह्यतां=लेलो। प्रागेव=पहिले ही। अपेक्षया=आवश्यकता से। विनिमातुं=बदला करने लिए, विनिमय करने के लिए। वारितः=हटाया है। परिक्रामतः=घूमते हैं चलते हैं। अम्बायै=माता के लिए। बाढ़म्=बहुत अच्छा। उपसृत्य=पास सरक कर, जाकर। भवत्या=आपने। जात=पुत्र। जीव=जीवित रह। उन्मत्तक=पागल। प्रत्ययः=पता, निश्चय। आर्यपुत्र=प्राचीन भारतीय नारियां पति को इसी नाम से पुकारती थीं। विलोक्य=देखकर। अभिवादयस्व=वन्दना कर। भव=हो। भवन्तं=श्रीमान् को। वृकोदर=भीम का नाम। अदूरतः=पास में ही। विश्रम्य=विश्राम करके। संभावयिष्यामः=पहुंचाते हैं, आतिथ्य करते हैं। आश्रमपदद्वारमात्रम्=आश्रम के बाहर के द्वार तक।

अर्थ—(तब तीन पुत्रों और पत्नी के साथ ब्राह्मण प्रवेश करता है और पीठ पीछे घटोत्कच प्रविष्ट होता है।)

ब्राह्मणः—अरे! यह कौन है?

ब्राम्हणी—आर्य! यह कौन हमें कष्ट दे रहा है?

घटोत्कच—अरे ब्राह्मण! ठहर, ठहर, जाना नहीं, जाना नहीं।

ब्राह्मण—अरे! मनुष्य! क्या हमारा छुटकारा भी है?

घटोत्कच— छुटकारा है, एक शर्त से।

ब्राह्मण—क्या समय (क्या शर्त)?

घटोत्कच—मेरी आदरणीय (तत्र भवती) माता हैं। उसने मुझे आज्ञा दी है, "बेटा! मेरे उपवास खोलने के लिए, इस वन से किसी मनुष्य को पकड़ कर लाना।" इसके पश्चात् मैंने आपको पा लिया। एक पुत्र को विदा कर (मेरे साथ)।

ब्राह्मण—दुष्ट अधम राक्षस! क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ?

घटोत्कच—

हे ब्राह्मणोत्तम! यदि तू मांगा हुआ एक पुत्र नहीं देता है (छोड़ता है) तो सपरिवार क्षणभर में नष्ट हो जायगा (नाश को प्राप्त करेगा)।

ब्राह्मण—यही मेरा निश्चय है।

मैं, परिणति (वृद्धावस्था) से जर्जर बने हुए, कृत-कृत्य (जिसने सब कृत्य निबटा लिये हैं) और विधिपूर्वक संस्कारों से युक्त (अपने इस) शरीर को राक्षस की अग्नि (क्रोध या भूख की) में होम कर दूंगा (जला दूँगा)।

ब्राह्मणी—आर्य! ना, ना, ऐसा मत कहो। केवल पति ही जिसका धर्म है, ऐसी का नाम पतिव्रता है। जिसका फल मिल चुका है, ऐसे इस (अपने शरीर से) मैं आर्य की और कुल की रक्षा करना चाहती हूँ।

घटो०—श्रीमती! श्रद्धेय माता को स्त्री अभीष्ट नहीं है (स्त्री के लिए नहीं कहा)।

ब्राह्मण—मैं आपके पीछे (साथ) चलता हूं।

राक्षस—अरे, तू तो वृद्ध है, दूर हट।

पहिला पुत्र—पिता जी! मैं कुछ कहता हूँ।

ब्राह्मण—बोल शीघ्र बोल।

पहिला पुत्र—अपने प्राणों से मैं गुरुजनों के प्राणों की रक्षा करना चाहता हूँ। (अतः) इस कुल की रक्षा के लिए आपके लिए मुझे त्याग देना उचित है।

दूसरा पुत्र—सबसे बड़ा पुत्र संसार में कुल में श्रेष्ठ होता है और पितृजनों का अत्यन्त प्रिय भी होता है। इसलिए, गुरुजनों के व्यवहार का स्मरण करता हुआ मैं ही जाऊँगा।

तृतीय पुत्र—हे आर्यो! ऐसा मत, ऐसा मत कहो!—

भीम—अनुग्रह है। आर्य को किससे भय ?

ब्राह्मण—सुनिये ! मैं केशवदास नाम का ब्राह्मण हूँ। उत्तर देश में मेरा यज्ञ बन्धु नाम का मामा है। उसके पुत्र के विवाह के लिए मैं सस्त्रीक (स्त्री के साथ) चला हूँ।

भीम—मार्ग निर्विघ्न हो। फिर बाद में ?

ब्राह्मण—तब यह राक्षस पुत्र परिजन के साथ मुझे मारने की इच्छा वाला मेरे सामने आता है (आया)।

भीम—इस प्रकार, इसने ब्राह्मण जन के मार्ग का विघ्न कर दिया ? अस्तु ! मैं इसको पकड़ता हूँ। ओ पुरुष ! ठहर, ठहर।

घटो०—यह ठहरा हूं (ठहर गया हूं)।

भीम—किसलिए ब्राह्मण जन का अपराध कर रहा है ? (इस) ब्राह्मणों में उत्तम को छोड़ दो।

घटो०—नहीं छोड़ता (छोड़ा जाता)—यदि मेरा पिता भी कहे (कहता है) कि इसे चुपचाप (बिना लड़े—शान्ति से) छोड़ दूं, तो भी यह नहीं छोड़ा जा सकता (क्योंकि यह माता की आज्ञा से पकड़ा गया है।)

भीम—(स्वगत) क्या माता की आज्ञा ? ओ हो, निश्चय से यह तपस्वी गुरु-सेवक है। ठीक कहा है। माता मनुष्यों की (और) देवताओं की भी देवता है। (प्रकट) अरे पुरुष ! कुछ पूछना है।

घटो०—बोल, जल्दी बोल।

भीम—किस नाम की हैं, तुम्हारी माता ?

घटो०—सुनिये, हिडिम्बा नाम की राक्षसी है।

भीम—(स्वगत) अच्छा, हिडिम्बा का पुत्र है यह ! ऐ पुरुष ! छोड़।

घटो०—नहीं छोड़ा जाता।

भीम—हे ब्राह्मण, ग्रहण करो अपने पुत्र का। हम इसके पीछे जायेंगे।

द्वितीय—मत, आप, ऐसे—

गुरुजनों के प्राणों की रक्षा के लिए मेरे तो प्राण पहिले ही चले गये हैं, (मैं तो मृतकप्राय हो चुका हूँ)। रूप और गुण से युक्त और युवा आप संसार में रहें।

भीम—आर्य ! मत, ऐसे मत (कहो)। मैं क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हूं। ब्राह्मण निश्चय से पूज्यतम हैं। इसलिए (इस अपने) शरीर से ब्राह्मण-शरीर का विनिमय करना चाहता हूँ (इसके बदले में मैं उसे वापिस लेना चाहता)।

घटो०—इसे किसने हटा दिया ?

भीम—मैंने।

घटो०—क्या तूने ?

भीम—और क्या ?

घटो०—तो फिर आप ही मेरे पीछे आओ। (दोनों घूमते हैं) यहीं ठहर ! तेरे आने का माता के पास निवेदन कर दूँ (सूचित कर दूं)।

भीम—अच्छा, जा।

घटो०—(पास जाकर) माता ! यह (मैं) नमस्कार करता हूँ। आपका देर से अभिलषित (चाहा हुआ) मनुष्य भोजन लिए ले आया हूं।

(प्रविष्ट होकर)

हिडिम्बा—पुत्र ! चिरंजीव हो। कैसा मनुष्य लाया है ? देखूँ तो इसको। क्या, यह मनुष्य लाना है ?

घटो०—मां ! कौन है यह ?

हिडिम्बा—पागल, हमारा देवता है।

घटो०—क्या विश्वास ?

हिडिम्बा—यह विश्वास है ! आर्यपुत्र की जय हो !

भीम—(देखकर) यह फिर कौन है ? अरे ! देवी हिडिम्बा !!

हिडिम्बा—पागल ! नमस्कार कर पिता को।

घटो०—पिता ! यह मैं नमस्कार करता हूँ।

भीम—पुत्र ! बहुत बल और पराक्रम वाला हो।

घटो०—अनुगृहीत हूँ।

ब्राह्मण—ऐसे ! यह भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है !!

भीम—पुत्र ! श्रीमान् केशवदास को नमस्कार कर।

घटो०—श्रीमान् को नमस्कार करता हूँ।

ब्राह्मण—पिता के समान गुणों और कीर्ति वाला बन।

घटो०—दया है (आभारी हूँ)।

ब्राह्मण—हे भीम! (तुमने) हमारे कुल की रक्षा कर दी है। सो जाते हैं।

भीम—पास ही हमारा आश्रम है। वहीं विश्राम करके जाइये।

ब्राह्मण—इस जीवनदान से (आपने हमारा) आतिथ्य कर दिया है। इसलिए अब जाते हैं।

भीम—फिर दुबारा दर्शन देने के लिए, आप सपरिवार पधारिये।

ब्राह्मण—बहुत अच्छा। प्रथम संकल्प होगा, (दुबारा दर्शनों के लिए)।

भीम—हिडिम्बे! इधर से। पुत्र घटोत्कच! इधर से। पूज्य केशवदास जी का आश्रम के द्वार तक आतिथ्य सम्मान करेंगे(उन्हें बाहर तक पहुँचायेंगे)।

वेषस्य पूजा

(वेष की पूजा)

शब्दार्थ—पुमान्=पुरुष। वस्त्रधरः=वस्त्र धारण करने वाला। अभ्यपूज्यत=पूजा किया गया। वाचाऽपि=वाणी से भी। नोपाचरत्=सेवा नहीं करता था। मन्यमानः=मानता हुआ। परिधाय=पहिन कर। प्रत्युत्थाय=स्वागत में उठकर। पाद्यमाचमनीयं=स्वागत की वस्तुएं, पान फूल चरणादोक और आचमन। भोजनादौ=भोजन के प्रारम्भ में। स्वोत्तरीये =अपनी चादर में। महानसम्=रसोई घर को। समुपानयत्=ले आता था। द्वित्रान्=दो तीनों को। न्यक्षिपत्=फेंकदेता था। क्रियते=किया जाता हैं। पूर्वेद्युः=पहिले दिन। वाससः=वस्त्र के। भोजयामि=भोजन कराता हूँ। भोदये=खाऊँगा। वपुषा=शरीर से।

अर्थ—वस्त्र (वेष भूषादि) से ही पुरुष संसार में पूजनीय (आदरणीय) बनता है। (यथा) महीन वस्त्र धारण किए हुए विद्वान्, धनी के द्वारा पूजा गया।

कोई दरिद्र विद्वान्, किसी धनिक के घर भोजन के लिए आया। पुराने फटे वस्त्र देखकर धनी ने वाणी मात्र से भी उसका सत्कार नहीं किया। फिर, वह विद्वान् उसमें अपने वस्त्र को ही कारण मानता हुआ, दूसरे दिन, महीन और स्वच्छ वस्त्र को पहिनकर उसी के घर गया। धनिक ने उसका अभ्युत्थान करके (उसके सत्कार में खड़े होकर), हाथ से हाथ को पकड़कर (हाथ मिलाकर) धन्यवाद (कि आपने यह घर पवित्र किया आदि) पूर्वक उसका आदर किया।

पांव धोने को और आचमन के लिए जल देकर, भोजन के लिए रसोई घर में (धनिक) ले आया। विद्वान् ने भोजन के प्रारम्भ में, अपनी चादर को भूमि पर फैला कर, उस पर अन्न के दो तीन ग्रास फेंक दिये। वह देख कर, धनिक "ऐसा क्यों किया जा रहा है ?" यह पण्डित को पूछता था (उसने पूछा)। और वह पण्डित कहता था, "हे बुद्धिमान् सेठ ! पहिले दिन मैं पुराने और मैले वस्त्र धारण किये आया था। तब वचन मात्र से भी आपने सत्कार नही किया। आज तो इस वस्त्र के प्रभाव से मैं आपके बहुत से सत्कारों का पात्र बना। इसलिए कृतज्ञ बना पहिले इसे खिला रहा हूं। पीछे से मैं खाऊंगा।" वह सुनकर सेठ कुछ लज्जित हुआ। और,यह ठीक भी कहा जाता है—

वस्त्र से, वपु (शरीर) से, विद्या से, वाणी और विनय से, इन पांच वकारों (वकारादि शब्दों) से रहित मनुष्य गौरव या महत्व नहीं प्राप्त करता।

महादेव-यशस्विसिंह-संवादः

(महादेव और यशवन्तसिंह का संवाद)

शब्दार्थ—यशस्विसिंह=जैसलमेर के राजा महाराज य (ज) शवन्तसिंह जी। पुण्य नगर=पूना नगर। पटभवनेषु=वस्त्र गृह, खेमा तम्बू आदि। अन्यतमस्मिन्=एक में। सम्पुटीकृत्य=जोड़कर। प्रावोचत्=बोला। शिव वीर=शिवाजी महाराज। दिदृक्षते=देखने की इच्छा करता है। अत्र-भवतः=श्रीमान् के। उररीकृत्य स्वीकार करके। ओं=अच्छा। प्रवेशय= दाखल कर। उक्तवति=कहने पर। दक्ष=दायां। निर्दिष्टवान्=निर्दिष्ट करता था, हाथ से संकेत करता था बैठने को। आलापः=बातचीत। महादेव= शिवा जी का दूत जो वस्तुतः उस रूप में स्वयं शिवाजी ही थे। प्रस्तोतव्यम्= प्रस्ताव करना है। निरूप्यतां=वर्णन करिये। प्रस्तोतुं=प्रस्ताव करने के लिए। चिक्कणदुर्गं=चाकण दुर्ग, शिवा जी के एक किले का नाम। खिद्यते= खेद किया जाता है। उपतिष्ठतेइति=उपस्थित है इसलिए। नाभ्यस्तः=नहीं अभ्यास किया। धूर्धरः=नेता जूले को धारण करने वाला बैल। राजन्वती= राजाओं वाली। अस्मादृशानां=हमारे जैसों का। स्फुटमेव=स्पष्ट रूप में ही। ग्लानः=मनमें ग्लानि लिए। वशवर्तिताकार्यं=वश में वर्तमान रहने का कार्य। सतां=सज्जनों का। तिरस्करणीयं=तिरस्कार के योग्य। पोतकर्णधारस्य= जहाज के नेता, पतवार पकड़ने वाले का। दिनेशस्य=सूर्य का। प्रसूतं= उत्पन्न। अर्द्धाङ्ग=अर्द्धांगिनी। सिंहसंहननै=शेर की सी गठन (तैयारी) वाले। परःशत=सौ से ऊपर, हजारों। ध्रियमाणं=रक्षमाण, स्तुति किए जा रहे। मरुदेश=मारवाड़, मरुस्थल। पदा=पांव से। समाक्रम्य= आक्रमण करके,आधीन करके। अवरंगजीवः=बुरे रंग से जीनेवाला, औरंगजेब।

अनिमेषः=निर्निमेष, बिनापलक झपके। बिभेति=डरता है। विस्मृतात्मदेहः=अपने आप की सुध बुध खोए। समपेक्षते=अपेक्षा करता हैं, चाहता है। विश्वस्मिन्नपि=सारे में भी। क्षेमाय=कुशल के लिए। वृद्ध्यै=वृद्धि के लिए। उन्नमय्य=ऊपर उठाकर। सनाम संकीर्तन=नामोच्चारण पूर्वक। आशोराशीन्=अशोर्वादों की झड़ियां। शिरांसि=सिरों को। उच्छेत्तुं=काटने के लिये। क्षुब्धम्=क्षुभित (अशान्त) हो गया। तिर्यग्वदनं टेढ़े मुख वाले को। विमनायमानं=उद्विग्न को। आलपनीयम्=बात करनी चाहिए। परिपाटीं=शैली को। क्षन्तव्यम्=क्षमा कर देना चाहिए। निरीक्ष्यताम्=देखिये। भल्लाः=भाले। भासन्ते=चमकते हैं। आक्रमितुं=आक्रमण करने को। सादिनः=अश्वारोही लोग। समाकर्णनेन=सुनने से। मोदन्ते=प्रसन्न होते हैं। मेदिनीं=पृथ्वी को। क्षालयितुं=धोने के लिए। कुलावतंसं=कुलभूषण को। लुण्ठन्ति=लूटते हैं। विलोपन व्रतिनः=लुप्त करने का व्रत लिए हुए। वैरिहतकान्=दुष्ट शत्रुओं को। वर्धयितुं=बढ़ाने के लिए। श्रीमति=श्रीमान् के विषय में। निरर्थं=व्यर्थ में। समर्प्यते=समर्पित की जाती है। शोभते=शोभा देता है। विवेच्यः=विवेचन करने योग्य है। कण्डूयनैः=खजाने के द्वारा। यापयित्वा=व्यतीत करके। ह्रीणोऽपि=लज्जित भी। संवृण्वन् =छुपाता हुआ। मरुराजः=मरुदेश का राजा। वार सहस्रं=हजार वार। आसिन्धुकूलं=सिन्धु-नदी के तट तक। विद्राविताः=भगादिये। जानीमहे=जानते हैं। ईहितं=इष्ट, इच्छित। आत्मोच्छेदायैव=अपने विनाश के लिए ही। क्रियेत=किया जाय। कदर्याणां=कायरों के। ऐक्यम्=एकता। निर्वहामः=कार्य चलाते हैं, निर्वाह करते हैं। मास्मभूद्=मत न हो, चाहे न हो। यौष्माकीनं=आप लोगों का। संवृत्तः=हुआ। भावत्कं=आपका। बद्धकर सम्पुटः=हाथ जोड़े हुए। अन्यतमः=एक। अङ्गीक्रियताम्=स्वीकार करिये। आरभ्यताम्=आरम्भ करिये। बिभ्यदिव=डरता हुआ सा। सम्प्रेष्य=भेजकर। शुश्रूषते=सुनने की इच्छा करता है। भारतद्रुहां=भारत द्रोहियों का। प्रत्यहं=प्रतिदिन। अस्मभ्यम्=हमारे लिए। रोचते=अच्छा लगता, रुचता है। वृत्तं=चरित्र को। अनुसरति=आचरण करता है। समश्रौपीत् =अच्छी

तरह सुनता था। आहोस्वित्=अथवा। भित्तिं=दीवार को। भित्वा=फोड़ कर। व्यापारेषु=कार्यों में। अपजहार=चोरी की। लुण्ठेयु:=लूटें। प्रतिरोद्धव्य:=रोकना चाहिये। अपेक्ष्यते=अपेक्षा होती है। द्वेष्टि=द्वेष करता है। मुद्रया=ढंग से, रीति से। निश्वस्य=लम्बी सांस लेकर। अभिदधाति=कहता है। अभयं=रक्षा। वाञ्छति=चाहता है। कृत प्रतिज्ञ:=जिसने प्रतिज्ञा की है। अन्यथा=उल्टा। विधास्यामि=करूंगा। योत्स्ये=युद्ध करूंगा। योत्स्यते=युद्ध किया जायगा। विदारयिष्यते=फाड़ा जायगा। वक्ष:=छाती को। वसुमती=पृथ्वी। स्नपयिष्यते=स्नान कराई जायगी। रोदं रोदं=रो रो कर। विलुठतामपि=लोटते हुओं की भी। त्रायध्वं=रक्षा करो। रोदसी=आकाश और पृथ्वी को। रोदयतामपि=रुलातेहुओं की भी। दारा:=स्त्रियों को। सकष्टं=कष्ट देकर। घ्नन्ति=मारते हैं, जिवह करते हैं। दुर्विनीतानाम्=उद्दण्डों का। मर्मज्ञ=मर्म को जानने वाला। अस्मादृक्षाणाम्=हमारे जैसों का। प्रभव:=प्रभुलोग ही, आपही। प्रमाणम्=सर्वोच्च अधिकारी। भवादृशा:=आप जैसे। मन्त्रणा=सलाह। मह्यं=मेरे लिए। महतां=बड़ोंका। ब्रूते=कहता है। सावहेलं=अवहेलना के साथ, अपमान के साथ। सोदर्याणां=भाइयों का। सच्छलं=छलके साथ। सक्रौर्यं=क्रूरता के साथ। अनावहनं=न धारण करना। ईदृशीभि:=ऐसियों द्वारा। कर ग्रहणं=टैक्स (जज़िया) लेना। अन्त:स्थं=अन्दरूनी। घोरतर=घोरतर। यतर:=जौनसा। शयिष्यते=सो जायगा। ततर:=वही। प्रशमं=शान्ति को, मृत्युको। एष्यत=प्राप्त हो जायगा। गिरि गुरु=पहाड़ जैसा भारी। विचिन्त्य=चिन्ता करके। वाग्मिता=भाषण शक्ति। वाचं यमं=जुबान बन्द, मौन। विधत्ते=करती है। कर्णपरम्परया=कानों-कानी, एक कान से दूसरे कान में। प्रसृता=फैलीहुई। विश्वसिमि=विश्वास करूँ। प्रोच्यएवं खलु=ऐसा मत कहिये। पंकेन अंकय=कीचड़ से सान। अवमानित:=अपमानित किया। युष्मादृशाणां=आप (तुम्हारे) जैसों का। कलङ्कनम्=कलङ्क लगाना। उक्तवत:=कहते हुए के। चक्षुषी=दोनों आँखें। उद्गिरताम्=निकलते थे, उगलते थे, दो। पटप्रान्तेन=वस्त्र के छोरसे। ममार्ज=पोंछता था। प्रेम पारावार

पूराप्लुतम् = प्रेम के समुद्र के प्रवाह से डुबोया हुआ। अद्यावधि = आज तक। आलिलिङ्क्षिपामि = आलिङ्गन करना चाहता हूँ। सपदि = फौरन। भाषितवान् = कहता था। अचिरादेव = शीघ्रही। समुपस्थास्यते = उपस्थित होगा। अन्तिके = समीप में।

नम्रीभूय = नम्र होकर। जानीते = जानता है। अकथत् = कहता था। निपुणं = होशियारी से, सूक्ष्मतया। ससंभ्रमम् = हड़बड़ाहट के साथ। बाहू = बाहों को। परिषस्वजे = आलिङ्गन करता था। सप्रफुल्ल नयनं = खुशी से फूली हुई, आँखों वाले को। सगोपनं = गुप्तरूप में। संललाप = वार्तालाप करता था। प्रतिनिवृत्सु = लौटने की इच्छा वाला। उदतिष्ठत् = उठ खड़ा। आलापः = बात-चीत। द्रष्टव्यम् = देखना है, देखना चाहिये।

अर्थ—(अम्बिकादत्त व्यास कृत शिवराज-विजय का भाग है। शिवाजी स्वयं दूत का रूप बनाकर महादेव नाम से महाराज जशवन्तसिंह के पास आकर बातचीत करते हैं। जशवन्तसिंह ने मुगलों की ओर से शिवाजी पर चढ़ाई की है और पूना लेकर अपना शिविर स्थापित किये आक्रमण करनेकी प्रतीक्षा में है।)

महाराज जशवन्तसिंह पूना-नगर के शिविर (सेना का) के खेमों में से एक में चिन्ता में डूबा हुआ था। तब पहरेदार, प्रविष्ट होकर, जयजयकार के साथ, हाथ बांध कर, बोला, "महाराज! शिववीर (शिवाजी) द्वारा भेजा हुआ महादेव पण्डित आपके दर्शनों की इच्छा कर रहा है।" उसको स्वीकृत कर के, 'हां, प्रविष्ट कर' महाराज के ऐसा कहने पर, पहरेदार ने भी वैसाही किया। फिर, पहरेदार के साथ, महादेव के प्रविष्ट होतेही, जसवन्तसिंह ने प्रणाम करके, बैठनेके लिए, दायें हाथ से, आसन स्थान का निर्देश (संकेत) किया। कुशल आदि के प्रश्न के पश्चात् उनका इस प्रकार वार्तालाप हुआः—

जसवन्तसिंह—पण्डितश्रेष्ठ! महाराष्ट्रराज (शिवाजी) का पत्र तो प्राप्त कर चुका हूँ, उससे अधिक आपको क्या प्रस्ताव करना है (क्या कहना है) वह बताइये।

महादेव—महाराज! श्रीमान् ने (शिववीर ने) कुछ प्रस्ताव करने के लिए मैं नहीं भेजा हूँ, बल्कि शोक (खेद) प्रकट करने के लिए।

जसवन्तसिंह—सो, क्या, पूनानगर के साथ प्रधान चाकणदुर्ग भी हारदिया, यह शोक है ?

महादेव—उसके हाथ में (अन्य) बहुतसे दुर्ग हैं। अतः दुर्ग के लिए वह दुःखित नहीं होता।

जसव०—तो क्या दिल्लीसम्राट् के साथ युद्ध की भारी विपत्ति उपस्थित होगई है, उसका दुःख है ?

महादेव—क्षत्रियराज ! विपत्ति के समय में धैर्य के त्याग का शिवाजी ने अभ्यास नहीं किया है।

जसवन्तसिंह—तो क्या शोक है ? कहिये, कहिये !

महादेव—जो क्षत्रियों की धू (नेतृत्व, गाड़ी का जूआ) को धारण करने वाला (नेता) है, जिससे यह पृथ्वी राजाओं वाली है, जो हमारे जैसों के अभिमान का पात्र (गर्वस्थानीय) है, जो सनातन धर्म की रक्षा के लिए एकमात्र शरण है और भारतीय वीरों के मुकुटों की मणि है (सर्वोच्च है), उसीको, आज, महाराष्ट्र राज (शिवाजी), धर्मनाशक इन यवनों की दासता से कलंकित देखकर दुःख करता है। तब, जसवन्तसिंह तो, "(यहतो) साफ साफ ही मुझे धिक्कार रहा है," इसकारण कुछ क्रोधित हुआ, (किन्तु) "भारतदेश के शत्रु यवनों की परवशता (दासता) का कार्य करता हूँ, यह सज्जनों के तिरस्कार के ही योग्य है," इस विचार से लज्जित (ग्लानियुक्त) हुआ। तब महादेव फिर वैसे कहने को प्रारम्भ हुआ. "महाराज ! स्वतन्त्रता के जहाज के कर्णधार (प्रधान नाविक), क्षत्रिय-कुलरूपी कमलों के लिए (खिलाने वाले) सूर्यरूप, उदयपुर नरेश श्री प्रतापसिंह के वंश में उत्पन्न नारीरत्न जिसकी पत्नी है, जो सिंह जैसी शरीर की गठन वाले हजारों वीरों से स्तूयमान (स्तुति किया) मरुदेश के राजसिंहासन को पांव से अधिकृत करके विराजमान है, यह दिल्ली का कलंकरूप औरङ्गजेब भी, क्षिप्रानदी के तीर पर, जिसकी भुजाओं का पराक्रम देख कर, क्षणभर, निर्निमेष, अपने शरीर की सुध-बुध खोये, आश्चर्यान्वित खड़ा रह गया था, सदैव जिससे (औरङ्गजेब) डरता है और सहायता चाहता है और इस समस्त भारतवर्ष में, नगर नगर में, ग्राम ग्राम में, घर घर में, मन्दिर मन्दिर में,

उसकी कुशलता के लिए, विजय के लिए, बल वृद्धि के लिए, राज्य-सम्पन्नता के लिए, ब्राह्मणश्रेष्ठ, हाथ (आकाश की ओर) ऊपर उठाकर, नाम (जसवन्तसिंह का) लेने के साथ आशीर्वादों का उच्चारण करते हैं, वही महावीर, वही भारत का रत्न, वही राजकुल का भूषण, (आज) यवनों के पक्ष को लेकर अपने लोगों का ही सिर काटने के लिए तैयार हुआ है, यही देख कर महाराष्ट्र राज का हृदय अत्यन्त दुःखित हुआ है।"

जसवन्तसिंह को कुछ लज्जा-से टेढ़ा मुख किये [वाला] और उद्विग्न (मन बिगड़े हुए) सा देख कर, [महादेव] फिर कहने लगा, "वीरश्रेष्ठ! मैं सामान्य दूत हूँ, महाराजाओं के साथ कैसे वार्तालाप करना चाहिये, उसकी शैली (ढंग) को भी नहीं जानता हूँ, यदि कोई अपराध हो जाय तो क्षमा कर देना चाहिये। किन्तु, देखिये, किसलिए यह युद्ध की तैयारी है? क्यों, ये भयानक भाले चमक रहे हैं? किसपर आक्रमण करने को ये घुड़सवार हैं? और किसको भस्म करने के लिए आपके क्रोध की यह दावानल (जो वन में से उत्पन्न होकर उसी को जलादेती है) है? क्या, जो आपको अशीर्वाद देते हैं, जो आपकी (गौरव) महानता को सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन्हीं के रक्त से पृथ्वी को धोने के लिये? जो आपको अपने (क्षत्रिय) कुल का भूषण मानते हैं, उन्हींके वंश का नाश करने के लिए? जो व्यर्थ में दीनों को लूटते हैं, कुलीन कन्याओं का अपहरण करते हैं, मन्दिरों को गिराते हैं, क्या उन्हीं वैदिक धर्म के नाश करने का बीड़ा उठाये (व्रत लिये) दुष्ट शत्रुओं की वृद्धि के लिए? जो, बिना किसी प्रयोजन के, स्वतन्त्र प्रजाओं को भी जीत कर, केवल अज्ञान व्यभिचार और अत्याचार के प्रचार के लिए, इन धूर्त यवनों के हाथों में वे देदी जाती हैं (आपके द्वारा), क्या यह आपके विषय में शोभा देता है? [आप जो नये देश जीत कर यवनों को दे रहे हैं, क्या यह अच्छा लगता है?] हे क्षत्रियसिंह! मैं क्या कहूँ? यह बात स्वयं [आपके द्वारा] ही विवेचनीय [विचारणीय] है।"

फिर, कुछ क्षणों को, सिर खुजलाने के द्वारा ही व्यतीत करके, महाराज (जस०) कुछ लज्जित-सा भी, लज्जा को छुपाता हुआ-सा, शनैः शनैः बोला:—

'दूतश्रेष्ठ ! बहुत सुन्दर ! तुम्हारी भाषणशैली की मैं बहुत प्रशंसा करता हूँ। किन्तु हमने राजपूत देश के क्षत्रियोंने, भयसे अथवा लोभसे अपनी आत्मा यवनों के हाथों नहीं सौंपी है। हमने ही, हजारों बार, खड्गों से यवनों को खण्ड-खण्ड किया था, हमने ही वे बार बार सिन्धुनदी के तट तक भगाये थे। नहीं जानपाते हैं, भगवती महामाया को क्या इष्ट है (वह क्या चाहती है), कि हम न चाहते हुए भी अपने आपको उनके हस्तगत (हाथों में) देखते हैं। अबतो, सारे ही राजपूत प्रदेश में, उनका ऐसा अधिकार है कि उनके साथ विरोध (करना) केवल अपने विनाश के लिए ही होगा। इसलिए क्या किया जाय ? इन कायरों (यवनों) के सौभाग्य से हमारी परस्पर की एकता भी नहीं है। इसलिए जैसा उचित होता है, वैसा (निर्वाह) करते हैं।"

मह।०—महाराज ! राजपूत देश में आपका वैसा बल चाहे ना हो, परन्तु इस प्रदेश में तो यवनों का अभी भी (इतना) विशेष अधिकार नहीं हुआ है। आप के आगे सब लोग कर-बद्ध रहेंगे, यह समस्त राज्य आप का है, शिववीर को भी आप अपने सेनापतियों में से ही एक के रूप में स्वीकार करिये और दिल्ली पति के साथ युद्ध आरम्भ कर दीजिये। जो, राज्यसिंहासन को पाये हुए भी, भय करता हुआ सा, इधर उधर, भारी युद्धों में श्रीमान् को भेज कर, श्रीमान् का अनिष्ट (मृत्यु) सुनना चाहता है, वह आर्यों (आप) के द्वारा दण्ड से ही शिक्षा देने के योग्य है (उसे दण्डित कर के ही शिक्षा देना उचित है)। एकता नहीं है, इसका भी दुःख नहीं होना चाहिये (मत हो)। श्रीमान् (आप) के प्रयत्न से ही एकता का आरम्भ करिये (स्वयं प्रयत्न करके एकता प्रारम्भ करिये)। शिववीर भारतीयों की परतंत्रता नहीं देखना चाहता। राज्य का लोभ तो उसके नहीं है। विजय होने पर, यह राज्य भी आपका ही हो सकता है। किन्तु, जिससे भारत के शत्रु यवनों की प्रबलता से प्रतिदिन धर्म का लोप न हो, यही शिववीर का उद्देश्य (अभिप्राय) है।

जसवन्त०—राज्य तो हमारा भी बहुत है। हम भी लोभ के परवश नहीं हैं। और शिवा जी का उद्देश्य भी सारा प्रशंसनीय ही है।

किन्तु, शिवाजी के कार्यों में, एक ही हमें अच्छा नहीं लगता, जो कि वह चोरों लुटेरों जैसा आचरण करता है।

महा०—महाराज! ऐसा मत कहिये। क्या, कहीं, किसी से, आपने अच्छी तरह (प्रामाणिक रूप में) सुना कि महाराष्ट्र राज निरपराध पथिकों को लूटता है, या कि उसने किसी की दीवार फोड़ कर धन चुरा लिया है? किन्तु इन लुटेरों के अत्याचारों को न सहता हुआ (वह), जिससे ये लुटेरे न लूटें, उन्हें ऐसा दण्ड देता है। धर्म सदैव रक्षणीय । स्त्रीत्व नाश, मन्दिरों को गिराना आदि का घोर अत्याचार सर्वथा रोकने के योग्य है (बन्द करना चाहिये)। कहीं पर, विवशतावश, नीति विशेष (खास नीति) का भी आश्रय लेने की अपेक्षा हो जाती है, तो क्या यह लुटेरापन है? दिल्ली का कलंक (औरंग०) तो प्रधान रूप से आप से ही द्वेष करता है। आपके द्वारा भी यदि "शठ के प्रति शठता" इस नीति से, कूटनीति ही स्वीकृत करली जाय तो क्या यह लुटेरापन होगा?

यश०—(लम्बी और गर्म साँस छोड़ कर) अच्छा, शिवराज मुझे क्या कहता है?

महा०—वह श्रीमान् से सहायता और अभयदान (रक्षा का आश्वासन) चाहता है।

यश०—दूतश्रेष्ठ! दिल्लीश्वर के साथ प्रतिज्ञा किये हुए मैं कैसे विपरीत आचरण करूँगा? (देर तक चिन्ता करके) दिल्लीश्वर को "महाराष्ट्रों के साथ युद्ध करूँगा," यह कह कर आया हूँ। तो, लड़ूँगा।

महा०—"सच मुच, युद्ध करोगे, अपने वंश में उत्पन्न हुओं की ही क्षत्रिय बालकों की छाती को छुरियों से फाड़ोगे, ब्राह्मणों के रक्त प्रवाह से पृथ्वी को स्नान कराओगे और यवनों के हाथों में अधिकार सौंप दोगे? जो, रो रोकर पाँवों में लोटते हुओं की, "बचाओ बचाओ!" के हाहाकार और चीत्कारों से आकाश और पृथ्वी को भी रुलाते हुओं की भी स्त्रियों को हर लेते हैं, बालक, वृद्धों को कष्ट दे देकर मारते हैं, उन इन उद्दंडों और अत्याचारियों को बल से और छल से भी, दण्ड देना परम पुण्य है, पाप नहीं। हे धर्म के मर्म के ज्ञाता! हमारे जैसों का तो केवल प्रार्थना कर देने

मात्र का ही कार्य है, स्वीकार करने या तिरस्कार करने में तो स्वामी को ही अधिकार है (आप चाहे जैसा करें)।

यश०—पण्डित ! आप जैसे (व्यक्ति) या आप सों के उपदेश (सलाहें) तिरस्कार के योग्य नहीं होते। शिवाजी का समस्त उद्देश्य मुझे अच्छा लगता है। परन्तु आप ही विचारिये, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करना क्या बड़े लोगों का (के योग्य) कार्य है ?

महा०—महाराज ! जिसको आप दिल्लीश्वर कहते हैं, उसी के राक्षसोचित (राक्षसों के योग्य) कार्यों को देखिये। अपने जन्म और पालन के कारण भूत वृद्ध पिता को अपमान पूर्वक पकड़ कर, वन्दी गृह में डालना क्या बड़े लोगों का काम है ? या, सगे भाइयों का, छल पूर्वक, क्रूरता के साथ, मारना और ऐसी ऐसी हत्याओं से भी उद्दण्ड भाव से लज्जा न करना, क्या बड़ों का कार्य है ? अथवा, केवल, आर्य (श्रेष्ठ) स्वभाव वाले आर्य जनों को ही क्लेश देने के लिए, गोहनन करना, मूर्तियों को तोड़ना, दीन हीन सनातन वैदिक धर्म वालों से केवल हमारे से ही कर (जजिया) ग्रहण करना बड़े लोगों का कार्य है ? या किसी पुराने अन्दरूनी वैर भाव को याद करके घोरतर युद्धों में आप को ही भेजना और (ऐसे) आपका अशुभ सोचना, क्या बड़ों का कार्य है ? "इस महाराष्ट्रीय युद्ध में, जसवन्तसिंह और शिवाजी में से जौनसा भी महावीर सो जायगा (गिर जायगा), वही (औरंगजेब के लिए) पर्वत के समान भारी भारतीय महावीर शान्त हो जायगा," यह सोच कर ही अथवा श्रीमान् को यहाँ भेजना, क्या बड़े लोगों का कार्य है ?

यश०—(कुछ सोच कर) दूतवर ! तुम्हारा भाषण-चातुर्य बलात् मुझे मूक कर रहा है। किन्तु, शिवाजी की धोखा देने की बात, हमारे देश में भी प्रतिगृह में फैली हुई है, सो कैसे, मैं उसके प्रस्तावों में विश्वास करूँ ?

महा०—(मानो क्रोध से) महाराज ! महाराज ! ऐसा मत कहिये। सनातन धर्म के एक मात्र रक्षक, महाराष्ट्र राज को इस प्रकार झूठे कलंक के कीचड़ से न सानो [गन्दा कर]। कौन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अथवा शूद्र उसने ठगा ? और म्लेच्छों में ही अथवा कौन सज्जन (उसने) अपमानित किया ?

हो! देव! शोभा नहीं देता, आप जैसों के मुख से इस प्रकार कलङ्क लगाया जाना।" ऐसा कहते हुए के ही महादेव पण्डित के दोनों नेत्रों ने आंसुओं की दो बून्दें गिरा दीं और महादेव ने उन्हें वस्त्र के छोर से पोंछ दिया।

तब महराज का भी हृदय, अचानक, प्रेम समुद्र के प्रवाह से आप्लावित सा और मन प्रसन्न सा हो गया। महराज तब "क्षमा करिये, आज से महाराष्ट्र-राज मेरा मित्र है। अब मैं उसका आलिंगन करना (भेंटना) चाहता हूँ। इस लिये, उस क्षत्रिय कुल भूषण को तुरन्त दिखा!" यह कहता था।

महा०—शिवराज शीघ्र ही श्रीमान् के चरणों के समीप उपस्थित हो जायगा।

फिर, महादेव ने झुक कर, कौन जाने, क्या उस (यश०) के कान में कहा। उसको सुनकर, यशवन्तसिंह, आश्चर्य के साथ, (हर्ष से) प्रफुल्लित नेत्रों वाले महादेव को निपुणता से देखकर, हड़बड़ाहट के साथ उठ कर, उसी प्रकार उठे हुए महादेव को, भुजाएँ पसार कर, आनन्द से आलिंगन करता था। उसके पश्चात्, महादेव के साथ बैठ कर, मुहूर्त भर तक गुप्त भाव से शनैः शनैः बात चीत करता था। तब महादेव लौटने की इच्छा वाला सा उठ खड़ा हुआ।

यश०—(द्वार के समीप जाकर) देखना, युद्ध के विषय में जैसे बात चीत हुई है, वैसे ही शिवाजी को निवेदन कर देना।

महादेव पण्डित "बहुत अच्छा" कह कर चल दिया।

चाणक्यसूत्राणि

(चाणक्य के सूत्र)

शब्दार्थ—मूलं=उत्पत्तिकारण। अर्थः=धन। इन्द्रियजयः=इन्द्रिय-निग्रह। कामासक्तस्य=कामी का। निश्चित्य=निश्चय करके। अनुष्ठानम्=पूरा करना। वाक् पारुष्यम्=वचन की कठोरता। विशिष्टं=अधिक। आरभेत=आरंभ करे। कार्यान्तरे=कार्य के बीच में (समय में)। दीर्घसूत्रता=सुस्ती। कार्यावाप्ति=कार्य सिद्धि। चारित्रं=सदाचारको। लंघयेत्=उलांघे। नावमन्येत=अपमान न करे। मित=परिमित। छाद्यते=ढकली जाती है। धार्यते=धारण किया जाता है। लोकः=संसार। मनागपि=जरा सा भी। बाधते=बाधा पहुंचाता है। हर्तव्यम्=हरना चाहिये। सुवृत्तं=सुचरित। ग्राह्यम्=ग्रहण करना चाहिये। अत्युपचारः=अधिक सत्कार, सेवा भाव। शङ्कितव्यः=शंका (सन्देह) करने के योग्य है। छिद्रं=त्रुटिको। बालिशः=मूर्ख। कपोतः=कबूतर। वरः=श्रेष्ठ। अक्रोधः=क्रोध से रहित। शैलमात्रं=पर्वत जितना। मन्यते=मानता है। निष्पत्ति=उत्पत्ति। स्तोतव्यः=स्तुति करना चाहिये। दिवा=दिन में। निष्कृतिः=निस्तार। आश्रित दुःखम्=आश्रित जन के दुःख को। श्वः=कलको। कार्यम्=करने योग्य। कुर्वीत=करे।

अर्थ—(१) सुख का कारण धर्म है (धर्म से सुख मिलता है)। (२) धर्म का (दया, पुण्य, तीर्थ यज्ञ आदि) का साधन धन है (धन के बिना ये यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य नहीं हो सकते)। (३) धन का कारण राज्य है (राज्य द्वारा ही सब से अधिक धन मिल सकता है)। (४) राज्य का मूल कारण इन्द्रिय-संयम है (विषयी राज्य-प्राप्ति या राज्य-संचालन नहीं कर सकता)। (५) कामी व्यक्ति (कोई भी बड़ा) कार्य पूरा नहीं कर सकता।

(६) वचन की कठोरता अग्निदाह से भी अधिक (जलाने वाली) होती है। (७) पहिले निश्चय करके (योजना बनाकर) पीछे कार्य प्रारंभ करे (जिससे कठिनाई न आये)। (८) कार्य के बीच में (कार्य करने के समय में) सुस्ती नहीं करनी चाहिये। (९) चंचल चित्त वाले को कार्य-सिद्धि नहीं होती (स्थिर बुद्धि से ही मनुष्य कुछ कर सकता है)। (१०) कभी भी सच्चरित्रता का उल्लंघन नहीं करना चाहिये (चरित्र-भ्रष्ट नहीं होना चाहिये)। (११) गुणवान् का आश्रय लेने से निर्गुण (गुणशून्य) भी गुण वाला बन जाया करता है। (१२, कभी भी (किसी) पुरुष को अपमानित न करे। (१३) दुर्जन लोगों से कोई लगाव (सम्पर्क) नहीं करना चाहिये (दूर रहना चाहिये)। (१४) परिमित भोजन ही (वस्तुतः) स्वास्थ्य है (नियमित परिमित आहार करने वाला सदैव स्वस्थ रहता है)। (१५) तृष्णा से बुद्धि ढाँप ली जाती है (वह भला बुरा विचारने में समर्थ नहीं रहती)। (१६) मूर्खों से (ले), शास्त्रार्थ (बहस) नहीं करे (उनका मनाना मुश्किल है)। (१७) संसार धर्म के द्वारा धारण किया जाता है (धर्म के आश्रय से खड़ा है। मनुष्य यदि आज अपने मनुष्यता के धर्म को छोड़दे, तो संसार नष्ट हो जाय, मनुष्य भेड़िया बन जाय)। (१८) दया धर्म का मूल कारण है। (१९) व्यसन (ऐब) थोड़ा सा भी बाधा (अड़चन) उत्पन्न करता है (व्यसनी कोई काम नियम से नहीं कर सकता)। (२०) दूसरे का धन नहीं हरना (चुराना) चाहिये। (२१) अभिमान के समान कोई (अपना) शत्रु नहीं है (अभिमान नष्ट कर देता है)। (२२) म्लेच्छ लोगों का भी सुचरित ग्रहण करना चाहिये (उनकी भी अच्छी बात को अपनाना चाहिये)। (२३) अधिक सत्कार पर शंका करनी चाहिये। (२४) मूर्ख व्यक्ति अपने दोष (त्रुटि) को नहीं देखता, दूसरे के ही दोषों को देखता है (इससे उसका सुधार नहीं होता)। (२५) कल के मोर से आज का कबूतर अच्छा है (जो मिले ले लेना चाहिये, कल मिलने वाले सौ रुपयों से आज मिल रहे पचास रुपये अच्छे हैं)। (२६) क्रोध रहित (शान्त स्वभाव का) व्यक्ति सबको जीत लेता है (क्रोध में तो भले बुरे का ज्ञान ही नहीं रहता)। (२७) सज्जन व्यक्ति तिलमात्र भी (किसी के) उपकार को पर्वत जैसा (बड़ा)

स्वरूप, राणाप्रताप के बल पराक्रम से चमकने वाली, अग्नि भी जिसकी जरा सी समता नहीं करती, ऐसी हल्दी घाट कुर्ता या धोती के समाम विजय-शालिनी हो रही है।

२. आस्ते·····················समीरः ॥····················।

अन्वय इह भारतभूमि वीरः प्रतापः आस्ते, हे पान्थ ! चेत् हिन्दु रसि सकृत् आनतः स्याः, सम्प्रत्यपि धीरं धीरं किन्तु प्रतिवदन्निव समीरः धीर-जनम् अधीरयति।

अर्थ—यहाँ भारतभूमि का वीर प्रताप विद्यमान है (अब भी उसकी आत्मा विद्यमान है), हे पथिक ! यदि हिन्दु है, तो एक वार नत-मस्तक होजा। धीरे धीरे कुछ कहती हुई वायु, अब भी धैर्यशाली जन को अधीर (व्याकुल, चंचल) कर देती है (राणा की यशोगाथा कहती हुई-सी वायु अब भी धीरजन को भी प्राचीन स्मृति में विचलित कर देती है)।

३. मा कातराः············आतनोति ॥················

अन्वय—"अद्यापि यत् जननी स्वतंत्रा न विहिता, (अतः) प्रिय-पारतंत्र्याः कातराः मां मा स्पृशत," इदमेव गदतीव तरूणां ततिः यत्र शाखा-कदम्ब कृतमर्मरम् आतनोति।

अर्थ—"आज तक भी, जो, माता स्वतन्त्र नहीं की है, (इसलिए) हे परतन्त्रता-प्रिय कायरो ! मेरा स्पर्श नहीं करो," ऐसा कहती हुई मानो वृक्ष पंक्ति, जहाँ (हल्दी घाटी में), शाखा समूहों के द्वारा उत्पन्न मर्मर शब्द को करती है (मर्मर शब्द के बहाने से मानो वह ऊपर की बात कह रही है)।

४. वीरप्रसूर्गा··············काचित् ॥ ················

अन्वय—पथ, अत्यन्यनिर्जन वने सखे ! यदा कदाचित्, "हा ! वीरप्र-[illegible] सुत [illegible] प्रतापो [illegible] तनयःअद्य क्व आस्ते ?" काचित् [illegible]।

अर्थ—"और फिर यहाँ निर्जन वन में, हे सखे ! जब कभी (प्रायः) "वीरों का अग्रणी, निर्भय युद्ध कला के समूहों वाला (जानने वाला), वह प्रतापी, नीतिवान् पुत्र, हाय ! आज कहाँ है ?" यह कहकर कोई कुररी, मानो वह मातृ भूमि हो, रोती है (कुररी की आवाज मातृ भूमि की रुदन ध्वनि कवि को प्रतीत होती है)।

५. अद्यापि यत्र ································· प्रकृतिर्वधूटी ॥

अन्वय—यत्र अद्यापि जननी 'मम हन्त ! राणा ! राणा !" (इति) विकला कुहूछलेन विरौति । च, अद्यापि नूनं तद्विरहिणी प्रकृतिवधूटी कदापि शोभां न धारयति ।

अर्थ—जहाँ, आज भी, जन्म-भूमि माता "मेरा राणा, हाय ! राणा !" (कहती हुई) कोयल के व्याज से रोती है। और, आज भी निश्चय से उसी के (राणा के) विरह में वियोगिनी बनी (यहाँ की) प्रकृति रूपी वधू कभी भी शोभा धारण नहीं करती (रेगिस्तानी नीरस प्रकृति कवि को प्रताप की विरहिणी प्रतीत होती है)।

६. अद्यापि यत्र ································· देवतानाम् ॥

अन्वयः—यत्र अद्यापि समधुव्रतझंकृतानि (सन्ति), लोलाक्षखञ्जनाञ्चित नर्तनानि (च सन्ति), अनुदिनं शुकशावकानां सत्कूजितानि सन्ति, किञ्च देवतातां (एतादृशं) तौर्यत्रिकम् जयति ।

अर्थ—जहाँ, आज भी सुन्दर भ्रमरों की झंकारें हो रहीं हैं, चंचल आँखों जैसे खञ्जन पक्षियों द्वारा आरब्ध नृत्य हो रहे हैं, सारा दिन तोतों के बच्चों के मधुकूजन (शब्द) हो रहे हैं और इस प्रकार एक दिव्य नृत्य शोभित हो रहा है। (कवि पक्षियों के मधुर नृत्यों और कलरव को दिव्य नृत्य के रूप में देखता है)

७. पुष्पंफलं ································· मातुः ॥

अन्वय—पुष्पं, फलं, गन्धवहः समीरः, अमला खद्योतपंक्तिः, च पिकालि-गीतिः, यत्र सरल प्रकृति प्रणीतं, पञ्चोपचारपूजन मिव मातु रस्ति ।

अर्थ—(पुष्प फल, पत्ती गान, दीप गन्ध से सीधी प्रकृति द्वारा किया हुआ जन्मभू का पञ्चोपचार पूजन समझता है कवि) पुष्प हैं, फल हैं, फिर सुगन्धित पवन है, स्वच्छ खद्योतों की पंक्ति है और कोयलों का गान है। (इस

श्रवीर वसुन्धरायाः स्वातन्त्र्यं किल संक्रीतवान्, [सा] इयं वलि-वेदिका, लोकत्रये श्रतिविदिता [अस्ति]।

अर्थ [हल्दीघाटी की वलिदान भूमि संसार में प्रसिद्ध है] जहाँ. राणा प्रताप के साथियों ने हजारों सिरों से मूल्य दान करके आर्यों की वीर भूमि की स्वतन्त्रता को खरीदा था, ऐसी यह आर्यों की वलिवेदी [हल्दी घाटी] तीनों लोकों में अति प्रसिद्ध है।

१२. वीराः...धरित्रीम् ॥

अवन्य—इहैव अथ चतुर्दश सहस्रमिता वीराः मृत्यु शयनतूलं यथा, आलिलिङ्गुः, किन्तु प्रशस्यतमशस्यमहीयसीं स्वां सन्मातरं धरित्रीं मनाग् नहि विजहुः ।

अर्थ—[मातृ भूमि के लिए हजारों वीरों के वलिदान का वर्णन है] यहीं फिर चौदह हजार वीरों ने मृत्यु का सोने की रजाई के समान आलिंगन किया [जैसे सर्दियों में रजाई से कोई लिपटता है ऐसे]। किन्तु, अत्यन्त प्रशंनीयघासों से शोभित अपनी माता रूप भूमि को उन्होंने जरा सा भी नहीं छोड़ा।

१३. अत्रैव वीर...तृप्ताः ॥

अर्थ—(रक्त की पवित्र गङ्गा का वर्णन किया गया है) यहीं, वीरगणों के रक्त की लाल गङ्गा, हजार धाराओं वाली होकर वही थी, जिसके दर्शन से, रमण करने से और स्नान करने से, देवताओं के साथ ऋषि भी तृप्त हो गये। (ऐसी पुण्यदायक रक्त की नदी वही)।

१४. सैषा स्थली...पामराणाम् ॥

अन्वय—एषा चकित चेतक चङ्क्रमाणां सा स्थली, एषा कुटिल कुन्त पराक्रमाणां सा स्थली, एषा अमराणामसुतोऽपि प्रियतमा सा स्थली. (अथच) एषा नरपामराणां ज्वरकरी सा स्थलो अस्ति)।

अर्थ—यह, चकित (भड़के हुए) चेतकको कुदाड़ियों की वह (इतिहास प्रसिद्ध) भूमि है, यह तीक्ष्ण भालों के पराक्रमों(के प्रदर्शन)की वह (विख्यात) भूमि है, यह देवताओं की (अपने) प्राणों से भी अधिक प्रियतमा वह (पुण्य

वती) भूमि है और यह नीच पापी मनुष्यों को सन्ताप (भय) देने वाली वह (इतिहास-पूज्य) भूमि है।

भासुरकसिंह कथा

(भासुरकसिंह की कहानी)

शब्दार्थ—वीर्यातिरेकात् = बल की अधिकता से। शशकादीन् = ससों आदि को। व्यापादय = मारता हुआ। नोपरराम = नहीं बन्द होता था, नहीं विश्राम लेता था। वनजाः = वन में उत्पन्न। सारंग = मृग। वराह = सूअर। महिष = भैंसा। अभ्युपेत्य = समझाकर। समयधर्म = सन्धि धर्म, या शर्तों का धर्म। उपविष्टस्य = बैठे हुए का। समेष्यति = आ जायेगा। सर्वोच्छेदनं = पूर्णनाश। अनुष्ठीयताम् = किया जाय।

अभिहितं = कहा है। भवद्भिः = आप सबने। प्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञा करके। निर्वृतिभाजः = सन्तोष धारण किये। पर्यटन्ति = घूमते हैं। वारक्रमेण = बारी के मुताबिक, या प्रतिदिन। याति = जाता है। उपतिष्ठते = हाज़िर होता है। वासरः = दिन। समायातः = आ गया। वेलातिक्रमं = निश्चित समय के उल्लंघन को। गच्छता = जाते हुए ने। ददर्श = देखता था। भव्य = सुन्दर। प्रकोप्य = कुपित करके। पातयिष्यामि = गिरा दूंगा। दिनशेषे = दिन की समाप्ति पर। क्षुत्क्षामकण्ठः = भूख से सूखे गले वाला। सृक्कणी = सिरड़ियों को, पपड़ियों को सुरकी को। परिलेलिहानः = चाटता हुआ। चिन्तयतः = सोचते हुए के। अश्नाय = खाकर। निःसत्वं = बिना पशुओं के। निपात्य = मार कर। उच्छेदयिष्यामि = नष्ट कर दूंगा। सत्वरं = शीघ्र। दंष्ट्रान्तर्गतः = दाढ़ों के अन्दर। लघुतरस्य = छोटे से का। विज्ञाय = समझ कर। समं = साथ। आगच्छन् = आता हुआ। अन्तराले = बीच में। विवरात् = खोह से। प्रस्थिताः = चले। स्मरत = याद करो। सकाशं = पास। मदीयं = मेरा।

वर्तितव्यम् = वरतना चाहिये। विश्वासस्थाने = विश्वस्त स्थान में, अपने घर में। धृत्वा = रखकर। द्रुततरं = शीघ्र ही। येन = जिस से। आवयोः = दोनों में से। आदिष्टः = आज्ञा दिया हुआ। क्षिप्त्वा = गिरा कर। अविदित्वा = न जान कर। गन्तुं = जाने के लिए। व्यापारेण = कार्य से। दुर्गस्थं = दुर्ग में स्थित को। तर्हि = तो। व्यवस्थितः = स्थित हो गया। आसाद्य = प्राप्त करके। सोढुं = सहने के लिए। मुमोच = छोड़ता था। प्रतिशब्देन = प्रतिध्वनि से। द्विगुणतरः = दुगना। नादः = शब्द। समुत्थितः = उठा। मत्वा = मानकर। प्रक्षिप्य = गिरा कर। परित्यक्ताः = छोड़ दिये। हृष्टमनाः = प्रसन्नचित्त। आनन्द्य = आनन्दित करके। प्रशस्यमानः = प्रशंसा किया जाता हुआ।

अर्थ—किसी वन में भासुरक नाम का सिंह रहता था। वह वलाधिक्य से नित्य ही अनेक मृग शशक आदियों को मारता हुआ भी विश्राम नहीं लेता था। फिर दूसरे दिन उस वन में उत्पन्न सब मृग सूअर, भैंसा शशक आदि मिलकर उसके सामने जाकर बोले, "हे स्वामी! इस सारे मृगों की हत्या से क्या (लाभ) है? क्यों कि, नित्य ही एक मृग से भी तेरी तृप्ति (सन्तुष्टि) हो जाती है। इसलिए हमारे साथ सन्धि की शर्तें (नियम धर्म) करली जायं। आज से लेकर, तेरे यहीं बैठेके खाने के लिए, जातिक्रम से प्रतिदिन एक पशु (मृग) आजाया करेगा। ऐसा करने पर तेरी आजीविका (जीवन धारण) बिना किसी क्लेश के होती रहेगी और हमारा भी फिर सर्वनाशन नहीं होगा। सो इस राज-धर्म को किया जाय।"

फिर, उनके उस वचन को सुनकर भासुरक बोला। "अहो सच कहा है आप लोगों ने। किन्तु, यदि मेरे यहाँ बैठे हुए के लिए नित्य ही एक मृग नहीं आया, तो निश्चय ही, सब को खा जाऊँगा।" तब वे सब वैसे ही प्रतिज्ञा करके सन्तोष से युक्त, वहां वन में, निर्भय घूमते हैं और एक (पशु) प्रतिदिन वारी के अनुसार जाता है। बूढ़ा, या संसार से विरक्त अथवा (अपने) पुत्र स्त्री के विनाश से भयभीत या शोक युक्त, कोई उनके बीच में से, उसके भोजन के लिए, दो पहर के समय में उपस्थित होता है। फिर, कभी, जाति के क्रम से शशक का दिन भी आ गया। वह, सब मृगों के द्वारा

भेजा हुआ, न चाहता हुआ भी शनैः शनैः चलकर, उसकी हत्या के उपाय को सोचता हुआ, निश्चित समय को निकाल कर, व्याकुल हृदय वाला, जितने वहां जाता है, इतने में, मार्गमें जाते हुए उसने एक कुंआ देखा। ज्योंही कि वह कुएं के ऊपर जाता है कि कुएं में अपनी परछांही देखी और देख कर उसने मन में सोचा कि "सुन्दर उपाय है। मैं अपनी बुद्धि से भासुरक को क्रोधित करके इस कूप में गिरा दूंगा।" फिर वह दिन के समाप्त होने पर (सायंकाल में) भासुरक के समीप पहुँचा। सिंह भी, समयनिकल जाने से भूख से सूखे गले वाला क्रोध से युक्त, (होठों पर की खुश्क) पपड़ियों को चाटता हुआ, सोच रहा था, 'अहो! सवेरे खा कर सारा वन मुझे पशुओं से शून्य कर देना चाहिये (कर देना है)।" इस प्रकार, सोचते हुए के उसके सामने, मन्द मन्द जाकर, नमस्कार करके ससा खड़ा हो गया। फिर जलती हुई आत्मा वाला भासुरक उसको लताड़ता हुआ बोला—'अरे! नीच ससे! एक तो तू छोटा सा है और दूसरे समय बिता कर आया है। सो, इस अपराध से तुझे मार कर, सवेरे सारे पशु-कुलों को नष्ट कर दूंगा।" तब ससा विनय पूर्वक बोला, "हे स्वामी! न मेरा और न पशुओं का ही अपराध है। सो, कारण सुनिये!" सिंह बोला, "जल्दी निवेदन कर, जब तक कि तू मेरे दांतों के अन्दर (मुंह में) नहीं होता।" ससा बोला "स्वामी! आज सब मृगों ने जातिक्रम से मुझ छोटे के (भेजने के) प्रस्ताव को समझकर, मैं पांच ससों के साथ भेजा था। और, फिर आते हुए, मार्ग के बीच में गुफा से निकल कर किसी दूसरे बड़े भारी सिंह ने मुझे कहा (मैं पकड़ा गया), "अरे अरे! तुम सब कहां चले हो? अपने इष्ट देवता का स्मरण करो (तुम्हें खाऊँगा)।" तब मैंने कहा, "हम, शर्त के अनुसार, वन के स्वामी भासुरक सिंह के पास (उसके) भोजन के लिए जा रहे हैं।" तब उसने कहा, 'यदि ऐसा है, तो यह वन मेरा है। मेरे साथ सब पशुओं को शर्तों के साथ [समझौते के साथ] बरतना चाहिये, वह भासुरक चोर है। फिर, यदि, वह यहां वन में राजा है, तो [इसके] विश्वासस्थान [पर] में ही चतुर है [घर में ही शेर है]। सो तू, इन ससों को यहीं रख कर, उसको बुलाकर जल्दी आजा, जिससे, जो कोई, हम दोनों में से जो बल-पराक्रम से राजा होगा, वह इन सब को खा

लेगा।" तब मैं उसके द्वारा आज्ञा दिया हुआ स्वामी [आप] के पास आया हूँ। यही समय निकल जाने का कारण है। सो, उसमें स्वामी ही प्रमाण हैं [आप को ही अधिकार है।]"। वह सुनकर भासुरक बोला, "हे भले लोग! यदि ऐसा है तो शीघ्र ही दिखा मुझे उस चोर सिंह को, जिससे मैं मृगों पर के क्रोध को उसके ऊपर गिरा कर, स्वस्थ [सन्तुष्ट] हो जाऊँ।" ससा बोला, "उसे मैंने, तो भी, बलवान् देखा है, सो उसके बल को बिना जाने हुए स्वामी का वहां जाना उचित नहीं है।"

भासुरक बोला, "अरे! तुझे इस बात से क्या? दिखा मुझे तू उसे दुर्ग में बैठे हुए को भी"। फिर शशक बोला, "यदि ऐसा है तो स्वामी आयें।" ऐसा कह कर [चलने को] आगे स्थित हो गया। फिर उसने आते हुए जो कुआ देखा था, उसी कुँए के पास जा कर [पा कर] वह भासुरक को बोला, "स्वामी! कौन तुम्हारे प्रताप को सहने में समर्थ है? तुझे दूर से ही देखकर (वह) चोर सिंह अपने दुर्गमें घुस गया है, सो आ दिखाऊँ।" भासुरक बोला, "मुझे दुर्ग को दिखा।" उसके बाद उसने वह कूप दिखा दिया। तब वह भी मूर्ख सिंह कूप के मध्य में जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर, अपना शब्द (सिंह का शब्द) करता था। तब प्रतिध्वनि की (गूंज) के कारण से कूए में से दुगना हुआ शब्द उठा। फिर उस सिंह ने उस (प्रतिबिम्ब) को शत्रु समझ कर, अपने को उसके ऊपर (कूए में) गिराकर प्राण छोड़ दिये। ससाभी प्रसन्न मन, सब पशुओं को (इस समाचार से) आनन्द देकर, प्रशंसित होता हुआ, उनके साथ, वहां वनमें सुखपूर्वक रहने लगा (रहता था)।

आल्हा

(इतिहास प्रसिद्ध वीर)

शब्दार्थ—चन्देल = क्षत्रियों का एक प्रसिद्ध वंश । अधीश्वराभ्यां = दो राजाओं के द्वारा । निर्पीडितः = पीड़ित । निकामं = अत्यन्त । अभवतां = हो थे मृतपितृकौ = अनाथ बने । इमौ = इन दो को । वीर गति = वीर की गति (मृत्यु) वाला । पितृ कृत्यं = पिता का कार्य । निर्वाहितं = निवर्तित । वयस्थौ = वयस्क, बड़े हुए । प्रचारयामासतुः = प्रचारित करते थे । वीर्यातिशयेन = शूरता की अधिकता से । नभो मध्यं = आकाश के मध्य को । प्रतपतिस्मारातीन् = शत्रुओं को अत्यन्त तपाता था । वाहिनी = सेना । शक्तः = समर्थ । समनुगृहीतौ = अनुगृहीत किए गये । अनयोः = इन दोनों का । राज्ञैव = राजा ने ही । पुत्रनिर्विशेषं = पुत्र के समान । पश्यतिस्म = देखती थी । अजायत = हुई । समुन्मन्तुं = छोड़ने के लिए । कृतप्रतिज्ञौ = जिन्होंने प्रतिज्ञा की है, ऐसे दो । अवर्तेताम् = वर्तमान थे (दो) । प्रतिमः = तुल्य । प्रणमेत् = प्रणाम करे । एव = ही । अपरे = दूसरे । उपचक्रमतुः = उपक्रम करते थे, आयोजन करते थे । प्रगुढा = बड़ी । प्रतिपत्ति = विश्वास, आस्था । उद्भासयितुं = चमकाने के लिए । प्रवृत्तः = प्रारम्भ हुआ । समर-प्रवृत्तयोः = युद्ध में प्रवृत्त हुओं का । सर्वतः = सब ओर । समराग्निः = युद्ध की अग्नि । तत एव = इसीलिए । अपावरणं = प्रतिदिन । अश्रूयत = सुनी जाती थी । अमन्यत = माना जाता था । यतः = क्योंकि । दुर्निवारः = कठिनता से निवारणीय । अभिमानतुः = मान करते थे (दो)। विज्ञान प्रचुरं = विज्ञानबहुल, अत्यन्त विज्ञानमय । विज्ञानपराः = विज्ञान परायण । तदनुगा = उनके पीछे चलने

वाली। विजानातिस्म=जानता था। एतादृशाणां=ऐसों का। यादृशः=जैसा। तादृशः=वैसा।

(२)

मातुलः=मामा। प्रकृतिः=स्वभाव। सम्पदुत्कर्षं=सम्पत्ति के उत्कर्ष को। सोढुं=सहने के लिए। शक्नोति=समर्थ होता है। प्रसरन्तीं=फैलती हुई को। यशोवल्लरीं=कीर्तिलता को। उच्छेत्तुं=काटने के लिए। आचरत्=करता था। यशोवर्द्धन मन्त्रः=यश बढ़ाने का मूल मंत्र। संवृत्तः=होगया। प्रचारिता=फैलादी। सन्निहितौ=समीप में स्थित। शोकाक्रान्तं=शोक से व्याकुल को। व्यधात्=करलेता था। लक्षयामि=लक्षित कररहा हूँ, देख रहा हूँ। अश्रुपूरवारिप्लुते=आंसुओं के प्रवाह के जल से डूबे। नेत्रे=दोनों नेत्र। अभूताम्=होगये। कपट प्रबन्ध कुशलानां=कपटजाल के बिछाने में चतुर। यावान्=जितना। तावान्=उतना। ग्राम=समूह। स्मितरेखा=मन्द हास्य। निर्गच्छति=निकलता है। मत्सरानलः=द्वेष की अग्नि। वाक्=वाणी। विनिःसरति=प्रवाह रूप से निकलती है। अवशिष्टाः=बाकी। प्रवृद्धः=बढ़ा हुआ। प्रत्यर्प्य=प्रति अर्पण करके। निवापांजलिं=तिलांजलि। तेभ्यः=उनके लिए। एवंविधः=इस प्रकार का। वदति=कहता है। कृपापारावारे=कृपाके समुद्र में। नक्रः=नाकू। भागिनेयः=भानजा। राजापचारः=राजा के प्रति विरुद्ध आचरण। विषण्णः=दुःखित। अपचारं=विरुद्ध-आचरण, निन्दनीय आचरण। आधातुं=रखने के लिए, करने को।

(३)

प्रभृतयः=आदि। प्रवृत्ताः=लगे हुए। प्रेक्षकाः=दर्शक। अत्रान्तरे=इसी बीचमें। कञ्चुकिः=अन्तःपुर में रहने वाला वृद्ध। राजाह्वानं=राजा का बुलावा। अश्रावयत्=सुनाता था। अकाण्डाह्वानं=बे मौके के बुलावे को। आह्वयति=बुलाता है। प्रस्थितौ=दो चलदिये। समालपन्तः=बातचीत करते हुये। वीर सरण्या=वीरों की पद्धति से। निषीदतुः=दोनों बैठ गये। प्रार्थितं=प्रार्थना। नियोगः=नियुक्ति, कर्तव्य। अनुष्ठेयः=करणीय है। प्रत्यभाषत्=पूछता था। बकितग्रीवः=टेढ़ी गर्दन किये।

निरधारयत् = निश्चय करता था । निपातयति = गिराता है । अमुं = उसको । वाचां = वचनों के । आज्ञाप्यताम् = आज्ञा दीजिए । ज्वलज्जटालं = जलती लटों से युक्त को । समुद्युक्तः = उद्यत हूं । प्रतिभटः = मुक़ाबले का योद्धा । सन्नद्धः = कटिबद्ध, तैयार । भवितुं = होने के लिए । त्वयि = तेरे में । आस्ताम् = अस्तु, रहने दो । प्रदेयः = देना है, देना चाहिए । मयि = मेरे ऊपर । मानयितव्यम् = माननीय । तदानृण्यं = उससे उऋणता । गन्तुकामः = जाने को चाहता हुआ । रक्ष्यः = रक्षणीय । अधिष्ठाय = आधार रखकर, इन पर अधिष्ठित होकर । कति = कितने । वा न = अथवा नहीं । सोढा = सहो । एकपदे एव = एक पद में ही, एक साथ ही । अशक्य = असम्भव । इत्थं = इस प्रकार । क्रोधारुणलोचने = क्रोध से आरक्त आँखों को । धीरं = धीरतापूर्वक । वक्तुं = कहनेके लिए । उपाक्रमत = उपक्रम करता था । प्रत्युपक्रिया = प्रत्युपकार, बदला । श्रीमद्भिः = श्रीमानोंने । सज्जम् = तैयार । चेष्टितुं = चेष्टा करनेके लिए । भावये = मानता हूं, समझता हूं । बालिशत्वात् = मूर्खता से । स्थातुं = ठहरने को । सहोदलेन = ऊदल (अपने भाई) के साथ । निःश्वसन् = निश्वसता हुआ । काले = समय होने पर । अनुभवनीयमेव = अनुभव करना ही चाहिये ।

(५)

रुधिरेण = रुधिरों से । समुल्लसित = चमकता हुआ । तृणाय मत्वा = तिनके के समान समझ कर । शिरसि = सिरपर । निधाय = रखकर । [illegible] हुआ माना (वास्तविक) बनाई । [illegible] = [illegible] । सूते = उत्पन्न होता है । रुद्ध = रुका हुआ । प्रतिविधातुं = प्रतिकार (उपाय) करनेके लिए । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । आदाय = लेकर । [illegible] = [illegible] । उत्पादयामासुः = उत्पन्न करते थे । [illegible] = [illegible] । सुरेन्द्र चापं = इन्द्रधनुष को । [illegible] = अन्य रङ्ग । [illegible] = [illegible] करता था । सिक्ताः = सींचे हुए । [illegible] = अनुभव करता था । [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] = [illegible] । [illegible] =

मयूर वाणी । सम्मूर्छिताः=टकराई हुई । उन्मादनां=मदमस्ती को । अजनयत्=उत्पन्न करती थीं । कृषीवल=किसान । निषादिन्यः- बैठने वालियां । जगुः=गाती थीं । हरित्=हरी । आस्तीर्णाः=बिछेहुये, व्याप्त । अधित्यका=ऊपर के भाग । पतद्भिः=गिरते हुओं के द्वारा । चलप्रभाभिः= चन्चल, सुखदायक प्रभा वालियों से । वल्लीभिः=बेलोंसे । अलक्ष्यत= दिखाई देती थीं ।

निषण्णाः=बैठे हुए । काल विडम्बित एव=समय की विडम्बना [तिरस्कार] से युक्त ही । आश्रयितुं=आश्रय लेनेके लिए । चेष्टते=चेष्टा करता है । तदानीन्तनीं=उस समय की, तत्कालीन । पणीकृताः=मूल्य बनादिये । परित्यज्यते=छोड़ी जारही है। परावर्तयितुं=लौटाने के लिए । अस्मान्= हमें । प्रेषयेत्=भेजे । इत्याशयात्=ऐसे अभिप्राय से । संयमिताः=खींचलीं । वल्गाः=बागें । प्रकृत्या प्रवृद्धं=स्वभाव से वृद्धिगत को । हृदि=हृदय में । निरुध्य=रोक कर । दुर्दैवोपहतेन=दुर्भाग्य से ग्रस्त द्वारा । विचारवता= विचारवान् के द्वारा । सत्क्रियते=सत्कार कियाजाता है । महोबातो=महोबा से । निर्वासितौ=निकाले हुए । प्रवृत्तौ=प्रारम्भ हुए । उपलभ्य=प्राप्त करके, जानकर । आनेतुं=लानेके लिए । स्वभृत्यान्=अपने अनुचरों को । प्रेषयामासुः=भेजते थे । प्रेम्णा=प्रेमके द्वारा । गृहीतौ=पकड़े हुए, बाधितकिए हुए । प्रतीयतुः=प्रति चलदिए [दो] । कृताभ्यर्थनौ=अभ्यर्थना किये हुए । आययतुः=प्राप्त होते थे । तौ=उन दो को । अभ्यषेचयत्= अभिषिक्त, नियुक्त करता था ।

विरहित सूर्यं=सूर्य से हीन । बलीयसा=बलवान् द्वारा । समावृतं =ढका हुआ । अपरैः=अन्योंने । माण्डलिकराजभिः=छोटे मण्डलोंके राजागणों के द्वारा । आक्रान्तुं=आक्रमण करने के लिए । अकारि= किया । कुतश्चित=कहीं से । परावर्तमाना=लौटती हुई । अनति दूरे= बहुत दूर नहीं, समीप ही । गृहीतवती=लेती थी । नाविदितं=अविदित (अज्ञात) नहीं है । कीदृशः=कैसा । न्ययुध्यन्=युद्ध करते थे । पराजिताः =पराजित हो गये । जिघांसितुं=मारने की इच्छा से । कथंकथमपि=

कठिनता से। प्रापुः = प्राप्त हुए। निवेदयामासुः = निवेदन करते थे। मृष्यति = क्षमा करता है। ज्ञाताः = सूचित कर दिये। आसाद्य = प्राप्त करके। शिबिरः = शिविर, पड़ाव। प्रान्तवर्तिनः = नगर के छोरों पर वर्तमान। निर्दयम् निर्दयता पूर्वक। अभिमुखं = सामने मुकाबले में। सम्मर्दः = मुठभेड़। उन्मीलित = [illegible]। अनुदत = दुःख देता था। प्रस्तुता = आ गई है। उपायान्तराभावे = अन्य उपाय के न होने पर। मासावसाना = मास के अन्ततक की, एक मास की। अवधिः = मोहलत। तदीया = उसकी। अनुभूतवान् = अनुभव करता था। छिन्नसन्देहाः = सन्देह रहित। भूभुजः = राजा लोग।

अधिगम्य = पाकर। भूपः = राजा। समाहूतवान् = बुलाता था। [illegible] = [illegible]। सन्निहिता = समीपस्थ। इतः = यहां से। स्थानान्तराश्रयणं = अन्यस्थान का आश्रय लेना। युक्तम् = उचित। परिखाः = खाइयां। विधेयाः = बना देना चाहिये। स्थाणुः = ठूंठ। तूष्णीं = चुप। [illegible] = [illegible] है। वाक् = वाणी। समासीना = प्राप्त की। [illegible] = [illegible] होते हैं। [illegible] = [illegible] बहुत। पुरः स्थितान् = आगे खड़े हुओं को। पुरेव = पहिले की तरह। विजय-श्रिया = विजय की शोभा से। प्रदीप्त = समुज्वल। [illegible] = [illegible] जाते हैं। मन्ये = मानता हूं। देवलदेव्यपराभिधाना = [illegible] जिसका दूसरा नाम है, ऐसी। विहाय = छोड़ कर। [illegible] = [illegible] करना चाहिये। [illegible] = [illegible] चाहिये। कथितं = कहा हुआ। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] हुए। चारणः = भाट। [illegible] = [illegible] के लिए। यथा समयं = उचित समय पर। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] करता था, [illegible] करता था। प्रतीयते = [illegible] है। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] हुई। [illegible] = प्रसाद से। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] में, विपत्ति में। [illegible] = [illegible] है। [illegible] = [illegible] की [illegible] हुआ। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] हुआ। [illegible] = [illegible] रहा है।

[illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] हैं। [illegible]

=प्रारम्भ हो गया है। दुष्प्रेक्षतां=कठिनता से दिखाई देने को, दुर्दर्शता को। यातं=हो गया है, चला गया है। प्रेक्षकाणां=दर्शकों का। विवृत-द्वाराणि=खुले द्वारों वाले। त्वदेवजीवितां=तू ही जिस का एक मात्र जीवन है, ऐसी को। अपहाय=छोड़ कर। प्रयासि=जाता है (तू)। चिरायान्तर्हितः=देर से छुपा हुआ (अदृश्य)। श्रूयन्ते=सुने जाते हैं। गमिताः स्मः=पहुंचा दिये हैं। भूयो भूयो=बार बार। याच्यमानः=प्रार्थित। प्रदत्तः=दी है। त्वर्यताम्=शीघ्रता करिये। सहानुजेन=छोटे भाई के साथ। भुक्ताः=भोगे। करवालेन=खड्ग द्वारा। हस्त मुष्टि=हाथ की मुट्ठी। त्वरितमेवं=शीघ्र ही। समुदेतु=उदित हो। नभो मण्डले=आकाश मण्डल में। अन्धकार कवलितम्=तम ग्रस्त। अवधेहि=जानले।

वक्रित ग्रीवः=टेढ़ी गर्दन किये। अस्थाने=अनुपयुक्त स्थान में। अनुरोधः=आग्रह। निवृत्त मेव=निपट हो गया। आवाम्=हम दोनों। कृते=लिए। जनकेन=पिताने। विस्मर्तव्यम्=भूलना चाहिए। पराङ् मुखः=विमुख, परे को मुख वाला। करदी भूताः=करदाता बने। प्राणानपेक्षं=प्राणों की अपेक्षा (पर्वाह) न करने पूर्वक। बहवः=बहुतसारे। आवाभ्याम्=हम दोनों ने निष्कासितौ=निकाल दिये। द्विर्भाषते=दो बार कहता है। अभाषत=बोला। अयुक्तं=अनुचित। उपेक्षते=उपेक्षाकरता है। त्राणाय=रक्षा के लिए। सभ्रातृकः=भाई केसाथ। अङ्गी कृतवान्=स्वीकार करता था। अद्योपेक्षणम्=आज उपेक्षा करना। खेदयति=दुःख दे रहा है। उपेक्ष्य=उपेक्षा करके। यः=जो। अन्यत्र=दूसरी जगह। पिण्ड पालितः=शरीर पोषण करने वाला। वदन्ति=कहते हैं। पूर्वे=पहिले लोग। उद्धर=उद्धार कर।

अर्थ—(आल्हा ऊदल महोबा के इतिहास प्रसिद्ध वीर हैं, जिन की गाथाएँ अब भी, आल्हा छन्दों में गाई जाती हैं) चन्देल वंशीय क्षत्रियों का अन्तिम राजा परमार देव नाम का था। अब महोबा के नाम से प्रसिद्ध नगर में उसकी राजधानी थी। परमार देव निर्बल है, यह देख कर (इति) हस्तिनापुर और कन्नौज के राजाओं ने उसको बहुत तंग किया (वह उन द्वारा

कठिनता से । प्रापुः = प्राप्त हुए । निवेदयामासुः = निवेदन करते थे । क्षम्यति = क्षमा करता है । ज्ञप्ताः = सूचित कर दिये । आसाद्य = प्राप्त करके । निवेशः = शिविर, पड़ाव । प्रान्तवर्तिनः = नगर के छोरों पर वर्तमान । निर्दयम् निर्दयता पूर्वक । अभिमुखं = सामने मुकाबले में । सम्मर्दः = मुठभेड़ । उन्मीलित = खुली । अतुदत् = दुःख देता था । प्रस्तुता = आ गई है । उपायान्तराभावे = अन्य उपाय के न होने पर । मासावसाना = मास के अन्ततक की, एक मास की । अवधिः = मोहलत । तदीया = उसकी । अनुभूतवान् = अनुभव करता था । विगतसन्देहाः = सन्देह रहित । भूभुजः = राजा लोग ।

अधिगत्य = पाकर । भूपः = राजा । समाहूतवान् = बुलाता था । राज्ञी अपि = रानी भी । सन्निहिता = समीपस्थ । इतः = यहां से । स्थानान्तराश्रयणं = अन्यस्थान का आश्रय लेना । युक्तम् = उचित । परिखाः = खाइयां । विधेयाः = बना देना चाहिये । स्थाणुः = ठूंठ । तूष्णीं = चुप । हन्त = दुःख है । वाक् = वाणी । समर्जिता = प्राप्त की । मन्त्रयन्ति = सलाह देते हैं । अमन्द = तीव्र बहुत । पुरः स्थितान् = आगे खड़े हुओं को । पुरेव = पहिले की तरह । विजय-श्रिया = विजय की शोभा से । प्रदीप्त = समुज्वल । विलोक्यन्ते = देखे जाते हैं । मन्ये = मानती हूं । देवलदेव्यपराभिधाना = देवलदेवी जिसका दूसरा नाम है, ऐसी । विहाय = छोड़ कर । प्रसादनीया = प्रसन्न करनी चाहिये । आनेतव्यः = लाना चाहिये । कथितं = कहा हुआ । राज्ञा = रानी ने ।ससाधुवादं = धन्य धन्य कहते हुए । चारणः = भाट । आनयनाय = लाने के लिए । यथा समये = उचित समय पर । सम्प्राप्तः = पहुंच गया । साक्षात्चकार = प्रत्यक्ष करता था, दर्शन करता था । प्रतीयते = प्रतीतहोता है । अकिञ्चनौ = तुच्छ । आप्लुता = भरी हुई । पूरेण = प्रवाह से । आयुष्मन् = आयु वाले ! नशुभे = अशुभ में, विपत्ति में । स्मर्यन्ते = स्मरण किये जाते हैं । विधातृ रोषा नल पतितः = विधाता की क्रोधाग्नि मेंपड़ा हुआ । रक्षिता = रक्षक । तत्रत्यानां = वहां वालों का । संरुद्धं = घेरा हुआ । निमज्जति = डूब रहा है ।

राष्ट्रं = राज्य । नामशेषतां = नाम मात्र बाकी रह जाने को । प्रवृत्तम्

उस समय कन्या का जन्म बड़ा अनर्थकारी माना जाता था। क्योंकि कन्या के विवाह के अवसर पर युद्ध कठिनता से निवारणीय होता था। उसी काल में, आल्हा ऊदल भी जन्म प्राप्त करते थे। विलास प्रधान समय में वीर लोगों का सम्मान स्वाभाविक ही होता है। राजा लोग विलासरत थे और प्रजा उन का अनुकरण करने वाली होती हैं। न्याय क्या है, सदाचार क्या है, यह कोई नहीं समझता था। ऐसे जैसे आचरणों [कार्यों] का जैसा फल होता है वह निश्चय से हुआ ही।

२

आल्हा का मामा माहल जी था। इसका विलक्षण स्वभाव किसी भी योग्य के ऐश्वर्य की उन्नति को मन से भी सहन नहीं कर सकता है। महोबा प्रान्त में, आल्हा ऊदल की कीर्तिलता को दिन दिन, फैलती देख कर, माहल जी महोदय उसको जड से उखाड़ देने के लिए प्रयत्न करने लगा। किन्तु माहल जी का यह प्रयत्न ही उनका यश (के लिए) बढ़ाने का मूल मन्त्र बन गया (उसकी निंदा से उनका प्रचार होने लगा)। माहल जी ने सर्वत्र आल्हा ऊदल की निन्दा फैलाई। कभी यह (माहल जी) राजसभा में भी गया। वहां आल्हा ऊदल भी समीप में स्थित नहीं थे। राज-सभा में प्रविष्ट हुए माहल जी ने अपना मुख शोक से व्याकुल सा बना लिया। उस प्रकार बने उसको देखकर राजा बोला, "मामा! कैसे शोकाकुल सा आपको मैं देख रहा हूं ?" राजा के वचन सुनकर माहल जी के दोनों नेत्र अश्रु प्रवाह के जल से भरे हुए हो गये (आँखों में आँसू भर आये)। कपट जाल रचने में चतुर लोगों को अपनी मनोभावनाओं पर जितना नियन्त्रण (अधिकार) होता है, उतना, योग के अभ्यास द्वारा इन्द्रियसमूह को वश में किये हुए (किसी) नर व्याघ्र (पुरुष श्रेष्ठ) को भी नहीं। उनका (कपट गुरुओं का) हृदय चाहे शोक से व्याकुल हो, किन्तु उनके होठ पर मन्द हास्य की रेखा देखी जाती है। मन प्रसन्न होता है, (किन्तु) नेत्रों से आंसुओं का प्रवाह बहता (होता) है। मन में द्वेष की (ईर्षा की) अग्नि प्रज्वलित है, किन्तु वाणी अमृत जैसी (उनके मुख से) निकलती है। माहल राजा को बोला, "आपके कर पल्लव से लालित इस जनके (मेरे) अब कोई भी मनोरथ शेष नहीं हैं

पीड़ित हुआ)। आल्हा और ऊदल उसकी (राज्य) सभा में सभासद (सदस्य) थे। बाल्य काल में ही अनाथ बने ये दोनों राजा परमार देव के द्वारा ही पालित पोषित हुए। परमार देव की रानी माल्हन देवी ने इनको पुत्रों के समान पाला था। इनका पिता 'जसराज' नाम का था। वह किसी युद्ध में वीर गति [मृत्यु] को प्राप्त हो जाता है। इनके पश्चात् इनके पिता का सारा कार्य [जो कि पिता करता है] परमार देव के द्वारा ही पूर्ण हुआ [राजा उनका पिता बन गया]। क्रम से वयस्क बने ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा के समान अपनी कीर्ति [चन्द्रिका] का विस्तार करने लगे [यश कमाने लगे]। उस समय बल पराक्रम की अधिकता के कारण महोबा नगर प्रसिद्ध हो गया। इन दोनों के प्रताप का सूर्य आकाश के मध्य में चढ़ा हुआ शत्रुओं को सन्ताप देता था। [उस समय] अयोध्या और महोबा के अधीश्वर की सेना के सामने क्षणभर भी ठहरने को कौन समर्थ था ? [वह अविजेय थी।] आल्हा और ऊदल भी राजा के द्वारा आभारी [अनुगृहीत] किये गये, इन का विवाह भी राजा ने ही अपने ही खर्च से किया और रानी इन दोनों को पुत्र के सदृश ही देखती थी [पुत्र में और इन में विशेषता [अन्तर] नहीं समझती थी]। इसी कारण से इन दोनों की भी राजवंश में भारी भक्ति हो गई। राज्य की रक्षा के लिये, प्राणों को भी सुख से छोड़ने की प्रतिज्ञा किये हुए ये दोनों रहते थे। आल्हा ऊदल जैसे वीर जिसके वश में रहते हैं, उसे सभी [अपने] प्राण की रक्षा चाहने वाले लोग नमस्कार ही करेंगे [करें]। अतः, अन्य सब राजा लोग परमार देव को, श्रद्धा से सम्मानित करने लगे [उसका सम्मान करने को आयोजन, उपक्रम, करने लगे]। महोबा राज्य की प्रतिष्ठा फिर बढ़ गई। वहां का क्षीण चन्द्र [यश] कला से पूर्ण (बना अब) दिशाओं को प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त हो गया (महोबा राज्य का यशो विस्तार चारों ओर होने लगा]।

उन दोनों का सदैव, युद्ध के लिए प्रवृत्त हुओं का ही समय निकलता था [सदैव युद्ध व्यस्त रहते थे]। उस समय भारत वर्ष में सब ओर युद्ध की अग्नि भड़की हुई थी। और इसी कारण वीरों का सम्मान किया जाता है। उस समय प्रति दिवस तलवार की झंकार सुनाई पड़ती थी।

उस समय कन्या का जन्म बड़ा अनर्थकारी माना जाता था। क्योंकि कन्या के विवाह के अवसर पर युद्ध कठिनता से निवारणीय होता था। उसी काल में, आल्हा ऊदल भी जन्म प्राप्त करते थे। विलाप प्रधान समय में वीर लोगों का सम्मान स्वाभाविक ही होता है। राजा लोग विलासरत थे और प्रजा उन का अनुकरण करने वाली होती है। न्याय क्या है, सदाचार क्या है, यह कोई नहीं समझता था। ऐसे जैसे आचरणों [कार्यों] का जैसा फल होना है वह निश्चय से हुआ ही।

२

आल्हा का मामा माहल जी था। उसका विलक्षण स्वभाव किसी भी योग्य के ऐश्वर्य की उन्नति को मन से भी सहन नहीं कर सकता है। महोबा प्रान्त में, आल्हा ऊदल की कीर्तिलता को दिन दिन, फैलती देख कर, माहल जी महोदय उसको जड से उखाड़ देने के लिए प्रयत्न करने लगा। किन्तु माहल जी का यह प्रयत्न ही उनका यश (के लिए) बढ़ाने का मूल मन्त्र बन गया (उसकी निंदा से उनका प्रचार होने लगा)। माहल जी ने सर्वत्र आल्हा ऊदल की निन्दा फैलाई। कभी यह (माहल जी) राजसभा में भी गया। वहां आल्हा ऊदल भी समीप में स्थित नहीं थे। राज-सभा में प्रविष्ट हुए माहल जी ने अपना मुख शोक से व्याकुल सा बना लिया। उस प्रकार बने उसको देखकर राजा बोला, "मामा ! कैसे शोकाकुल सा आपको मैं देख रहा हूं ?" राजा के वचन सुनकर माहल जी के दोनों नेत्र अश्रु प्रवाह के जल से भरे हुए हो गये (आँखों में आँसू भर आये)। कपट जाल रचने में चतुर लोगों को अपनी मनोभावनाओं पर जितना नियन्त्रण (अधिकार) होता है, उतना, योग के अभ्यास द्वारा इन्द्रियसमूह को वश में किये हुए (किसी) नर व्याघ्र (पुरुष श्रेष्ठ) को भी नहीं। उनका (कपट गुरुओं का) हृदय चाहे शोक से व्याकुल हो, किन्तु उनके होठ पर मन्द हास्य की रेखा देखी जाती है। मन प्रसन्न होता है, (किन्तु) नेत्रों से आंसुओं का प्रवाह बहता (होता) है। मन में द्वेष की (ईर्षा की) अग्नि प्रज्वलित है, किन्तु वाणी अमृत जैसी (उनके मुख से) निकलती है। माहल राजा को बोला, "आपके कर पल्लव से लालित इस जनके (मेरे) अब कोई भी मनोरथ शेष नहीं है

(सब पूर्ण हो गये हैं)। किन्तु, "आपके आश्रय से ही पला हुआ व्यक्ति, उन उन (आपके) उपकारों के प्रति तिलाञ्जलि समर्पित करके (भुलाकर), अब, आपके विषय में ही (साथ ही) कपट करने को उद्यत हुआ है," यह जान कर, मैं अत्यन्त चिन्तित हो गया हूं।" परमार देव ने पूछा, "क्या, मेरे अन्न से पुष्ट होने वाले व्यक्तियों में, है कोई ऐसा?" माहल कहता है, "देव! मैं ही (हूं)।" चकित राजा ने पूछा, "क्या आप?" माहल उत्तर देता था, "महाराज! क्या बताऊँ? आपके कृपा के समुद्र हृदय में कोई नाक्र (जल-चरजीव) प्रविष्ट हो गया है। मेरा भानजा आल्हा। उसका (किया हुआ) राज्य के प्रति अपराध मेरा ही होता है।" राजा कुछ दुःखित सा बोला, "आल्हा मेरे पुत्र के समान है। बड़े कष्ट से मैंने (उसे) पाला है। वह क्या आज मेरे विषय में कोई षड्यन्त्र (विद्रोह) रच रहा है? मैं इस विषय में कोई विश्वास नहीं कर सकता।" माहल राजा के पास सरककर (जाकर) कान में कुछ कहता है।

२

इस समय, आल्हा ऊदल आदि बहुत से लोग घुड़सवारी की शिक्षा के अभ्यास में लगे हुए हैं, वहाँ बहुत से दर्शक भी उपस्थित हैं। इसी बीच में कञ्चुकि (राजमहल के वृद्ध) ने आकर राजमहल का बुलावा सुनाया। महाराज के बिना अवसर के बुलावे को सुनकर आल्हा कुछ भयभीत सा हो गया,' किस निमित्त (कारण) से आज महाराज बुलाता है?" अश्व संचालन छोड़कर वे दो राजसभा को चल दिये। और, दर्शक गण परस्पर वार्तालाप करते हुए, अपने अपने घर को चले गये। राजा के समीप जाकर वीरों के ढंग में नमस्कार करके, वे दोनों यथोचित स्थान पर बैठ गये। राजा बोला, "मेरी प्रार्थना आपको दे दी जायगी।" "क्या कार्य (कर्त्तव्य) करना है"? आल्हा ने आदर पूर्वक और विनय के साथ पूछा। आल्हा महाराज को ना करने में सर्वथा असमर्थ था, क्योंकि ना करना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है। इतना कह कर वह टेढ़ी ग्रीवा करके, अपने मामा को देखता था और निश्चय कर लेता था कि "इसने ही कोई कपट जाल रचा है।" आल्हा फिर राजा को बोला, "महाराज के प्रश्न करने का यह क्रम (सिलसिला) इस जन को (मुझे) सन्देह

के समुद्र में डुबा रहा है (मेरे मन में सन्देह उठता है)। ऐसे वचन सुनने का यह जन (मैं) अभ्यासी नहीं है। जैसी इच्छा हो, आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से, मैं जलती लाटों वाली अग्नि का भी आलिंगन करने को कटिबद्ध हूँ (आग में कूद सकता हूँ); काल का भी प्रतिभट (विरुद्ध लड़ने वाला योद्धा) हो सकता हूं (मृत्यु से भी लड़ सकता हूँ)।" राजा उसको बोला, "मेरा भी तेरे में ऐसा ही विश्वास है। अस्तु नाहर नाम का घोड़ा मुझे देना है।" इस राज वचन को सुनकर आल्हा बहुत दुखी हुआ। 'यह राजाज्ञा कैसे पालन करनी चाहिये ? राजा के क्रोध को यदि गिन भी लिया जाय (उसको सह भी लिया जाय), तो भी ना काके क्षत्रियधर्म का कैसे तिरस्कार किया जाय ? राजा का उपकार मेरे ऊपर बहुत बड़ा हैं, किंतु धर्म के विरुद्ध राजा का वचन कैसे मान्य हो किसी क्षत्रिय वीर के द्वारा (क्षत्रिय धर्म विरुद्ध बात कैसे मान सकता है राजाकी) ? इस शरीर को महाराज ने पाला है, सो, उसको सुख से छोड़ कर उससे उऋणता को प्राप्त करने की इच्छा वाला हूं शरीरार्पण द्वारा उऋण हो सकता हूं)। किन्तु धर्म तो सब प्रकार से रक्षणीय ही है। शस्त्र और घोड़ा, ये दोनों क्षत्रियों के बाह्य प्राण रूप होते हैं, जिनके बिना वह जी नहीं सकता। इनका ही आधार लेकर क्षात्र धर्म ठहरता है। सो अब क्या करना चाहिये ? राजा ने मेरे ऊपर उपकार किया है. यह सत्य है. किन्तु मैंने भी तो राज-सेवा की ही है। राजसेवा के लिए अथवा मैंने कितनी आपत्तियाँ नहीं सहीं ? अब, उन सब को एक साथ ही भूल कर, राजा मुझको धर्म भ्रष्ट करने को उद्यत है। (अतः) अब राजा की आज्ञा का पालन असम्भव है।" आल्हा, इस प्रकार, बहुत विचार करके और माहल देव पर क्रोध से रक्त नेत्र डाल कर, धैर्यपूर्वक कहने लगा, "(यह जन) राजा की आज्ञा का पालन करने में असमर्थ है।" परमादेव बोला, "क्या मेरे उपकारों का यही प्रत्युपकार (बदला) है ? श्रीमान् ने यह पदवी मेरी कृपा से ही प्राप्त की है।" आल्हा ने उत्तर दिया, "महाराज ! जानता हूं, सब जानता हूं। किन्तु, क्षत्रियधर्म के पालन को मैं प्रत्युपकार (बदला देने) से भी बड़ा मानता हूं। धर्म के विरुद्ध राजा का वचन किसी भी प्रकार से माननीय नहीं होता। देव ने शरीर पाला है, (सो) वह तो देव के कार्यों में (के लिए) कटिबद्ध है. किन्तु, धर्म के विरुद्ध आचरण करने में भी मैं अपने को असमर्थ

अब सब सुखी हैं। और, सभी घर में बैठे, वर्षा समय की शोभा को देखते हैं। ऐसे समय में, कोई भी घर से बाहर, एक पग भी चलने के लिए नहीं चाहता। समय (कालचक्र) की विडम्बना (हास्य-तिरस्कार) का पात्र हो वर्षाकाल में, एक स्थान को छोड़कर, दूसरे स्थान का आश्रय लेने के लिए चेष्टा करता है। आल्हा ऊदल के, माता के साथ, जन्मभूमि छोड़ने का यही (वर्षा का) समय था। अथवा, उनकी तात्कालिक मानसिक अवस्था का वर्णन करने को कौन समर्थ हो सकता है ? जहां बालकपन बिताया, जिसकी रक्षा के लिए प्राणों का मूल्य लगा दिया, आज हाय ! वही (मातृ भूमि) छोड़ी जा रही है। या जन्म भूमि का त्याग किस व्यक्ति को दुःखी नहीं करता ? "हम रूसे हुए जा रहे हैं, इसलिए, कभी राजा हमें लौटालने के लिए किसी को भेज दें," इस अभिप्राय से घोड़ों की बागडोर कस लीं, जिससे उनकी गति मन्द हो गई। प्रकृति सौन्दर्य से बढ़े हुए शोक के प्रवाह को, किसी प्रकार, हृदय में रोक कर वे चल दिये ।

गुण ग्राही लोग, सब जगह, मिल जाते हैं। एक हत-भाग्य मूर्ख के द्वारा तिरस्कृत गुणी (किसी) दूसरे विचारवान् व्यक्ति द्वारा सत्कृत सम्मानित होता है। "आल्हा ऊदल, महोबा से बाहर निकाले हुए, अन्य देश को जाने के लिए चल दिये हैं," इस समाचार को पाकर, बहुत से राजाओं ने उनको लाने के लिए अपने सेवक भेजे (नौकरों को भेजते थे)। उन में कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा जयचन्द का पुत्र भी था । राजकुमार के द्वारा, प्रेम से बाधित किये वे दोनों कन्नौज नगर की ओर चल पड़े । वहाँ महाराज के द्वारा सम्मानित और आदृत (सत्कृत) हुए अत्यन्त प्रेम (प्रसन्नता) को प्राप्त हुए। राजा जयचन्द ने उन्हें अपने सेनापति के पद पर अभिषिक्त (नियुक्त) कर दिया।

सूर्य से रहित मेरु का शिखर घने अन्धकार से आच्छादित हो जाता है। आल्हा ऊदल से रहित महोबा नगर पर आक्रमण करने के लिए अन्य माण्डलिक (छोटे छोटे) राजाओं ने प्रयत्न किया। इस अवसर पर, पृथ्वीराज की सेना कहीं से लौटती हुई, मार्ग के मध्य में, महोबा नगर से थोड़ी दूर विश्राम (पड़ाव) ग्रहण करती थी (पड़ाव डालती थी)। सैनिकों का कैसा

स्वभाव होता है, किसी से अज्ञात नहीं है। बिना कारण के ही, चन्देल चौहान सैनिक परस्पर लड़ पड़े। चौहान सैनिक थोड़े थे, इसलिए हारे हुए, अत्यन्त क्रोध से, जगत् को नष्ट करने की इच्छा के लिए चले, बड़ी कठिनता से राजधानी को प्राप्त हुए, और निवेदन करते थे सारे यथार्थ वृत्तान्त को राजा पृथ्वीराज के पास, "हे महाराज! कोई भी वीर अपने सैनिकों का अपमान क्षमा नहीं करता।" पृथ्वीराज ने सेनापतियों को सेना तैयार करने के लिए आज्ञा दी। फिर, समय पर, पृथ्वीराज सेना सहित महोबा की ओर चल दिया। महोबा के समीपवर्ती स्थान को पाकर, चौहान सेना का शिविर स्थापित हुआ और नगर प्रान्त पर स्थित सब गावों को उन्होंने निर्दयतापूर्वक लूट लिया।

चन्देलों की सेना चौहानों की सेना के सामने (मुकाबले में) चली। दोनों में प्रथम मुठभेड़ हुई। किन्तु चन्देलों की सेना चौहानों की सेना से हार गई। अब परमारदेव की आँख खुली। आल्हा ऊदल का अभाव बहुत दुःख देने लगा। किन्तु इस समय यह सोचना (चिन्ता) अयुक्त है। अन्य उपाय न होने पर, सेना तैयार करने के लिए, चन्देल राजा ने एक मास की ~धि मांगी और पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। चौहान ~ा (पृथ्वीराज) सन्धि के नियमों और (अपनी) प्रतिज्ञा का अच्छी तरह पालन करता है। इस प्रतिज्ञा पालन के दोष से या गुण से, इसने ~ कष्ट नहीं उठाये, ? तो भी प्रतिज्ञा पालन के व्रत को नहीं छोड़ा। एक मास की अवधि का यह पालन ही करेगा," इस विचार से चन्देल राजागण निःसन्देह (निश्चिन्त) हो गये।

मासान्त की अवधि पाकर चन्देल राजा परमारदेव, सलाह करने के लिए *सभा को बुलाता था। वहां रानी भी समीप में स्थित थी। वहां किसी* ने कहा, "यहां से किसी अन्य स्थान का आश्रय लेना ही इस समय उचित है।" किसी दूसरे ने कहा, "नगर के चारों ओर मजबूत खाइयां बना देनी चाहियें।" राजा ठूंठ की तरह चुपचाप बैठा है। इस अवसर पर रानी बोली, "दुःख है, तुम वीरों की यह वाणी (वचन)? जिन्होंने पहिले, पराक्रम से विजयलक्ष्मी प्राप्त की थी, अब वे ही अन्य स्थान का आश्रय लेने के

लिए सलाह दे रहे हैं !! कहां गया इस समय तुम्हारा वह महान् तेज ? सब वीरों को इस समय भी मैं (अपने) आगे स्थित देख रही हूं, तो भी पहिले की तरह विजयलक्ष्मी से चमकते हुए मुखों वाले, शोभा वाले नहीं दिखाई देते हैं। मैं मानती हूं, (मेरा विचार है), जिसका केवल देवी दूसरा नाम है, ऐसी वह विजयलक्ष्मी, रुष्ट हुई हमें छोड़ कर चली गई है। निश्चय से पहिले, वही प्रसन्न करनी चाहिये। और आल्हा ऊदल जैसे भी हो वैसे महोवे लाने चाहियें।" रानी द्वारा कही हुई बात सबको प्रशंसा के साथ स्वीकृत हुई।

जगन्नाथ नाम का कोई भाट भेजा गया, कन्नौज नगर से आल्हा ऊदल को लाने के लिए। उचित समय पर जगन्नाथ कन्नौज नगर को प्राप्त हुआ और चन्देल वीर (आल्हा) का दर्शन करता था। जगन्नाथ को दुःखित देख आल्हा बोला, "कविवर! मार्ग भूल गया है ऐसा प्रतीत होता है। कैसे, आज, दोनों अकिञ्चन (हम) स्मृति पथ में आये (कैसे हमारी याद आई)?" "आयुष्मन्! विपत्ति में ही देवताओं का स्मरण हुआ करता है। अब महोवा नगर विधाता की क्रोधाग्नि में गिरा हुआ भस्म हो रहा है, वहां वालों का इस समय कोई भी रक्षक नहीं है। पृथ्वीराज के द्वारा घेरा हुआ नगर भारी दुःख में डूब रहा है।"

"इस समय चन्देल राज्य मानो, नाम शेष (नष्ट) होने को प्रवृत्त हुआ है। वह आंखों को मनोहर लगने वाली शोभा कहीं विलीन हो गई है। वह नगर इस समय दर्शकों के लिए कठिनता से देखने योग्य हो गया है (देखने की स्वतन्त्रता नहीं रही है)। खुले द्वार वाले घर विरले ही दिखाई देते हैं। हाय! मारे गये हैं! हाय! निराधार हैं! पुत्र! शोक से व्याकुल माता की ओर देख। 'हे नाथ! तू ही जिसका एकमात्र जीवन है, ऐसी दासी को छोड़कर कहां जाता है? मेरा साथी देर से छुप गया है।' इस प्रकार के करुण क्रन्दन वहां प्रति घर में सुने जाते हैं (लोग मारे जा रहे हैं)। पृथ्वीराज ने हमें ऐसी दशा को प्राप्त कर दिया है। बार बार प्रार्थित (मांगी हुई) उसने एक मास की अवधि दी है। उसके बाद युद्ध चलेगा। महाराज के द्वारा आपके पास प्रेषित हुआ हूं (भेजा गया हूं)। "आप ही वीर (इस समय) शरण हैं;" यह समझकर ही महाराज ने मुझे आज भेजा